I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 11, अंक - 3 जुलाई - 99

Vol.-11, Issue-3 July-99

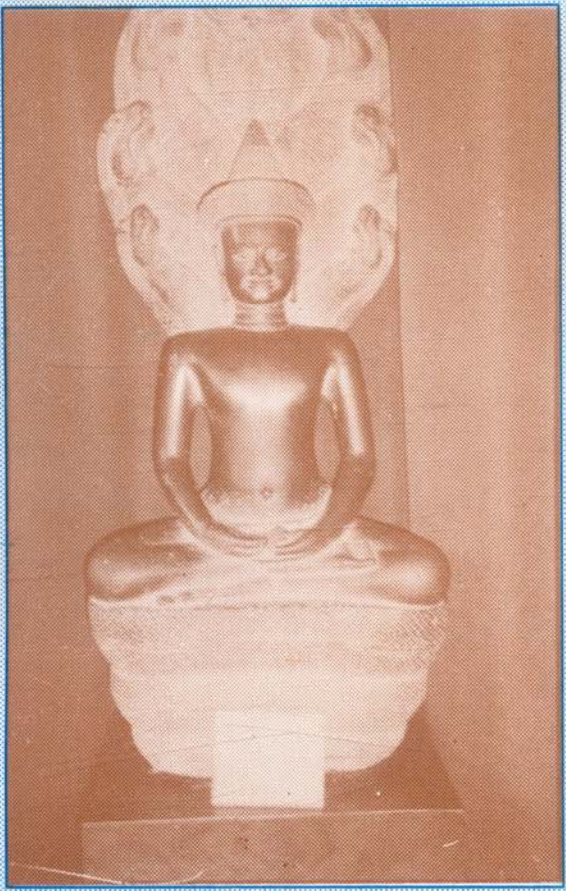

केन्द्रीय म्यूजियम में पार्श्वनाथ की प्रतिमा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

के विशाल मुनिसंघ सहित

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर

एवम्

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

में प्रथम शुभागमन (29.7.99) के अवसर पर

समस्त मुनिसंघों के चरणों में शतशः नमन

मुखपृष्ठ चित्र परिचय

केन्द्रीय इलेक्ट्रानिकी अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (C.E.E.R.I.) के सेवानिवृत्त वैज्ञानिक डॉ. जिनेश्वरदास जैन 1995 से कम्बोडिया के जैन मन्दिरों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। आपने 23.3.98 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में **'कम्बोडिया के पंचमेरू मन्दिर'** विषय पर अपना रोचक एवं सारगर्भित व्याख्यान दिया था। इसी समय आपने इन मन्दिरों पर तैयार किया गया एक विस्तृत मोनोग्राफ भी ज्ञानपीठ को प्रस्तुत किया था।

सम्प्रति श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा ने डॉ. जैन की एक कृति **'अंगकोर के पंचमेरू मन्दिर - इतिहास के नवीन परिप्रेक्ष्य में'** प्रकाशित की है। 64 पृष्ठीय इस लघु पुस्तिका में प्रकाशित 31 चित्रों में से अधिकांश आर्ट पेपर पर मुद्रित हैं। यह नयनाभिराम चित्रावली ही कम्बोडिया में जैन संस्कृति के व्यापक प्रचार-प्रसार की कहानी कह रही है। भारत के अनेक प्रसिद्ध जैन तीर्थों को नाम साम्य के आधार पर कम्बोडिया में खोजने के **डॉ जे. डी. जैन** के प्रयास से भले ही कोई सहमत हो या न हो किन्तु कम्बोडिया में जैन संस्कृति समृद्ध रूप में रही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मुखपृष्ठ पर प्रकाशित चित्र केन्द्रीय संग्रहालय कम्बोडिया में संग्रहीत **भगवान पार्श्वनाथ** का है, जो उक्त पुस्तक के पृष्ठ क्रमांक 35 पर प्रकाशित है।

— सम्पादक

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 11, अंक 3 — **जुलाई - 1999**
Volume 11, Issue 3 — **July - 1999**

मानद् - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452 017 INDIA

☎ (0731) 464074 (का.) 787790 (नि.), 545421 (ज्ञानपीठ) फैक्स : 0731 - 787790
E.mail : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करने से पूर्व सम्पादक / प्रकाशक की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्पादक मंडल / Editorial Board

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर, 554, सराफा, **जबलपुर - 482 002**	**Prof. Laxmi Chandra Jain** Retd. Professor - Mathematics & Principal Upstairs Diksha Jewellers. 554, Sarafa, **Jabalpur - 482 002**
प्रो. कैलाश चन्द्र जैन सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष प्रा. - भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग, विक्रम वि. वि., उज्जैन, मोहन निवास, देवास रोड़, **उज्जैन - 456 006**	**Prof. Kailash Chandra Jain** Retd. Prof. & Head, A.I.H.C. & Arch. Dept., Vikram University, Ujjain, Mohan Niwas, Dewas Road, **Ujjain - 456 006**
प्रो. राधाचरण गुप्त सम्पादक - गणित भारती, आर - 20, रसबहार कालोनी, लहरगिर्द, **झांसी - 284 003**	**Prof. Radha Charan Gupta** Editor - Gaṇita Bhāratī, R - 20, Rasbahar Colony, Lehargird, **Jhansi - 284 003**
प्रो. पारसमल अग्रवाल प्राध्यापक - रसायन भौतिकी, ओक्लाहोमा स्टेट वि.वि., अमेरिका बी - 126, अग्रवाल सदन, प्रतापनगर, **चित्तौड़गढ़** (राज.)	**Prof. Parasmal Agrawal** Prof. of Chemical Physics, Oklohoma State University, OH - U.S.A B - 126, Agrawal Sadan, Pratap Nagar, **Chittorgarh** (Raj.)
डॉ. तकाओ हायाशी विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान, दोशीशा विश्वविद्यालय, **क्योटो - 610 - 03 (जापान)**	Dr. Takao Hayashi Science & Tech. Research Inst., Doshisha University, **Kyoto - 610 - 03 (Japan)**
डॉ. स्नेहरानी जैन पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान, 'छवि', नेहानगर, मकरोनिया, **सागर (म.प्र.)**	**Dr. Snehrani Jain** Retd. Reader in Pharmacy, 'Chhavi', Nehanagar, Makronia, **Sagar (M.P.)**

सम्पादक / Editor

डॉ. अनुपम जैन सहायक प्राध्यापक - गणित, शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, 'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर, **इन्दौर - 452 009** फोन : 0731 - 787790	**Dr. Anupam Jain** Asst. Prof. - Mathematics, Govt. Holkar Autonomous Science College 'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar, **Indore - 452 009** Ph.: 0731 - 787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 100=00	रु./Rs. 200=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 400.00/U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।
सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय ही प्रेषित करें।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ — 5
□ अनुपम जैन

अध्यक्षीय - परामर्शदात्री समिति का पुनर्गठन — 7
□ देवकुमारसिंह कासलीवाल

लेख / ARTICLE

क्लोनिंग तथा कर्मसिद्धान्त — 9
□ अनिलकुमार जैन

जैन कर्म सिद्धान्त की जीव वैज्ञानिक परिकल्पना — 17
□ अजित जैन 'जलज'

कालद्रव्य : जैन दर्शन और विज्ञान — 23
□ कुमार अनेकान्त जैन

रसायन के क्षेत्र में जैनाचार्यों का योगदान — 33
□ नन्दलाल जैन

जैन भूगोल : वैज्ञानिक सन्दर्भ — 43
□ लालचन्द जैन 'राकेश'

णमोकार महामंत्र - साधना के स्वर — 49
□ जयचन्द्र शर्मा

Exploration of Representation of Numbers in Nemicandracārya Works — 53
□ Dipak Jadhav

टिप्पणी / NOTE

What Dreams Talk about — 64
□ A. P. Jain

पुस्तक समीक्षा / Book Review

डॉ. नेमीचन्द्र जैन साहित्य - एक अवलोकन तथा
डॉ. नेमीचन्द्र जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व द्वारा श्री प्रेमचन्द जैन — 65
□ अनुपम जैन

प्रतिष्ठा प्रदीप द्वारा पं. नाथूलाल जैन शास्त्री — 67
□ अनुपम जैन

अनेकान्त दर्पण शोध वार्षिकी — 68
□ अनुपम जैन

ज्ञानपीठ के प्रांगण से एवं गतिविधियाँ — 69

मत - अभिमत — 79

अगले अंकों में

अन्य ग्रहों पर जीवन की आधुनिक शोध	☐ हेमन्त कुमार जैन, जयपुर
गोम्मटसार का नामकरण	☐ दिपक जाधव, बड़वानी
Colour : The Wonderful Charecterstics of Sound	☐ Muni Nandi Ghosh, Ahmedabad
Jaina Paintings In Tamilnadu	☐ T. Ganesan, Thanjavur
The Early Kadambakas and Jainism in Karnataka	☐ A. Sundra, Sholapur
शक तथा सातवाहन सम्बन्ध	☐ नेमचन्द डोणगाँवकर, देउलगाँवराजा
जैन साहित्य और पर्यावरण	☐ जिनेन्द्र कुमार जैन, सागर
जैन धर्म और पर्यावरण	☐ मालती जैन, मैनपुरी
प्रकृति पर्यावरण के संदर्भ में आहार का स्वरूप	☐ राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

अर्हत् वचन पुरस्कार (वर्ष 10 - 1998) की घोषणा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहन देने एवं शोधार्थियों के श्रम को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 1989 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 श्रेष्ठ आलेखों को पुरस्कृत किया जाता है। वर्ष 10 (1998) के 4 अंकों में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन हेतु एक त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल का निम्नवत् गठन किया गया था -

1. **डॉ. एन. पी. जैन**, पूर्व राजदूत, ई - 50, साकेत, इन्दौर
2. **प्रो. सरोजकुमार जैन**, पूर्व प्राचार्य एवं प्राध्यापक - हिन्दी, मनोरम, 37 पत्रकार कालोनी, कनाड़िया रोड, इन्दौर
3. **प्रो. सी. एल. परिहार**, प्राध्यापक - गणित, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर निम्नलिखित आलेखों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। ज्ञातव्य है कि पूज्य मुनिराजों / आर्यिका माताओं, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्यों एवं विगत पाँच वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित लेखकों द्वारा लिखित लेख प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः रुपये 5001/-, 3001/- एवं 2001/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह से नवम्बर / दिसम्बर 99 में सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार - 'नेमिचन्द्राचार्य कृत ग्रन्थों में अक्षर संख्याओं का प्रयोग', 10 (2), अप्रैल - 98, पृ. 47 - 59, **श्री दिपक जाधव**, व्याख्याता - गणित, जी - 1, माडल स्कूल कैम्पस, **बड़वानी** - 451551।

द्वितीय पुरस्कार - 'दिगम्बर जैन आगम के बारे में एक चिन्तन', 10 (3), जुलाई - 98, पृ. 35 - 45, **प्रो. एम. डी. वसन्तराज**, 66, 9 वाँ क्रास, नवेलु रास्ते, कुवेम्पुनगर, मैसूर (कर्नाटक)

तृतीय पुरस्कार - 'Epistemology in the Jaina Aspect of Atomic Hypothesis', 10 (3), July - 98, pp 29 - 34, **Dr. Ashok K. Mishra**, Dept. of History, Culture and Archaelogy, Dr. R.M.L. Avadh University, **Faizabad** - 224001

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
सचिव

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

अर्हत् वचन के गत अंक में हमनें इसी पृष्ठ पर जैन समाज के लिये सर्वाधिक महत्व के कतिपय महत्वपूर्ण अकादमिक / सर्वेक्षणात्मक कार्यों की चर्चा की थी। यह सभी कार्य व्यापक निवेश तथा परिणाम हेतु लम्बी समयावधि की अपेक्षा के कारण सुस्थापित संस्थाओं द्वारा ही हस्तगत किये जा सकते हैं। वरिष्ठ जैन विद्वान एवं इतिहास में गहन रूचि रखने वाले भाई श्री रामजीत जैन - एडवोकेट, ग्वालियर ने इस सूची में एक कार्य और जोड़ा है वह है - जैन धर्म, दर्शन, इतिहास से सम्बद्ध समस्त शिलालेखों, प्रतिमालेखों, ताम्रपत्रों, यन्त्रों एवं प्रशस्तियों का संकलन। वस्तुतः जैन इतिहास की दृष्टि से यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है एवं हम उनके सुझाव (पत्र दि. 15.7.99) के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं तथा आशा करते हैं कि कोई न कोई संगठन इस दायित्व को अवश्य स्वीकारेगा।

*मेरे उक्त सम्पादकीय नोट पर व्यापक सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई। इस श्रृंखला में दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय महामंत्री **श्री माणिकचन्द जैन पाटनी** का पत्र प्रतिनिधि पत्र के रूप में मत - अभिमत स्तम्भ में प्रकाशित किया जा रहा है। नैतिक समर्थन तो महत्वपूर्ण होता ही है लेकिन अब आवश्यकता इस बात की है कि चिन्तन से आगे बढ़कर सकारात्मक कार्य भी प्रारम्भ किया जाये। श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के आदरणीय **श्री हीरालालजी जैन** ने त्वरित कार्यवाही करते हुए इन्दौर आकर इस सन्दर्भ में चर्चा की। उनके ट्रस्ट के सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की योजना तो चल ही रही थी, भावनगर के इस ट्रस्ट ने समस्त आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराते हुए सम्पूर्ण देश में विकीर्ण पांडुलिपियों के सर्वेक्षण तथा मानक प्रारूप में उनके सूचीकरण की भावना व्यक्त की। हमनें भी इस कार्य की आवश्यकता, उपादेयता, प्रासंगिकता एवं स्थाई महत्व को ध्यान में रखते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के परिसर में ही इस योजना का क्रियान्वयन श्रुत पंचमी के पुनीत पर्व पर प्रारम्भ किया। इस प्रकार गत अंक के सम्पादकीय के बिन्दु क्रमांक 4 की भावनाओं की पूर्ति हेतु ठोस प्रयास प्रारम्भ हो गये।*

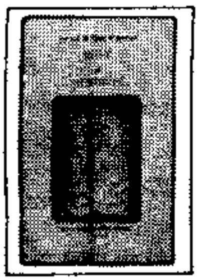

*बिन्दु क्रमांक 5, जिसके अन्तर्गत पाठ्य पुस्तकों में निहित विसंगतियों का संकलन प्रस्तावित है, के सन्दर्भ में **पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी** ने भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन - जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) की आख्या से अलग इस विषय पर अविलम्ब एक स्वतंत्र पुस्तक निकालने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर ने इस बहु प्रतीक्षित पुस्तिका के प्रकाशन का दायित्व स्वीकार किया। यह पुस्तिका प्रकाशित भी हो चुकी है। अब इस श्रृंखला में और भी विसंगतियों के प्रकाश में आने पर उसे आगामी संस्करणों में सम्मिलित किया जा सकेगा। इस अनुकरणीय पहल हेतु*

मैं स्वयं अपनी ओर से तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। सम्पादकीय के प्रथम तीन बिन्दुओं पर भी शीघ्र ही कोई संस्था कार्य प्रारम्भ करेगी, ऐसी आशा है।

बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में सामाजिक/अकादमिक क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं को सार्थक परिणाम प्राप्त करने हेतु अपनी योजनाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिये जिससे कि उनके कार्यों में

(1) निरन्तरता (Continuity)

(2) विश्वसनीयता (Creditability)

(3) सुसंगतता (Consistency)

का समावेश हो। मात्र तात्कालिक महत्व की योजनाओं को हस्तगत करने से राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं की साख में अभिवृद्धि नहीं होती।

सामाजिक/अकादमिक क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं से मेरा नम्र निवेदन है कि वे

1. संसाधनों के केन्द्रीयकरण
2. कार्यों के विकेन्द्रीकरण
3. वित्तीय नियंत्रकों द्वारा अकारण प्राथमिकताओं में परिवर्तन से उत्पन्न आर्थिक संकट को रोकने
4. पुनरावृत्ति को रोकने
5. संस्थाओं के मूल प्राण कार्यकर्ताओं में समर्पण के भाव को जाग्रत करने एवं उनकी रूचियों में स्थायित्व लाने
6. बदलते परिवेश में संस्था एवं कार्यकर्ताओं की तात्कालिक एवं दीर्घकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु

ध्यान दें। ये सब करने से ही संस्थाएँ अपनी साख को बनायें रखते हुए धर्म, समाज और राष्ट्र को कुछ सार्थक योगदान दे सकेंगी। वरना अर्थ प्रधान इस युग में केवल लच्छेदार भाषणों, जोड़ तोड़ के चुनावों, शाब्दिक आश्वासनों या भावनाओं के प्रवाह से कुछ नहीं होने वाला है। हर संस्था थोड़ा-थोड़ा कार्य भी नियमित, निरन्तर एक ही क्षेत्र में, एक लक्ष्य लेकर करें तो भी अन्त में बड़ी उपलब्धि मिल सकती है। **आज की फिक्र कर, कल किसने देखा है** जैसी निराशावादी बातें करने वाले तथा कथित सामाजिक कार्यकर्ता निजी जीवन में तो पूरी योजनायें बनाते हैं, 50 साल आगे को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं किन्तु सामाजिक कार्य में दृष्टि तात्कालिक सम्मान पर रहती है। यह दृष्टि समाज के लिये घातक है। कम से कम अकादमिक संस्थाओं को ऐसे कार्यकर्ताओं से दूरी ही बनाये रखना श्रेयस्कर है।

अंत में मैं प्रस्तुत अंक के सभी विद्वान लेखकों तथा सम्पादक मंडल के सभी माननीय सदस्यों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनके सहयोग से ही प्रस्तुत अंक वर्तमान रूप में प्रस्तुत किया जा सका है। संस्थाध्यक्ष माननीय श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल की सतत अभिरूचि एवं प्रेरणा श्लाघनीय है। पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

21.7.99 **डॉ. अनुपम जैन**

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

परामर्शदात्री समिति का पुनर्गठन

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की विकास यात्रा के प्रत्येक पग पर जैन विद्या के अध्येताओं का असीम स्नेह एवं संरक्षण इस संस्था को मिल रहा है। यह हम सबके लिये संतोष का विषय है। सितम्बर 1988 में ज्ञानपीठ की शोध त्रैमासिकी 'अर्हत् वचन' के प्रवेशांक के विमोचनोपरान्त इसी वर्ष हमनें इसके संपादक डॉ. अनुपम जैन को अपना मार्गदर्शन तथा सहयोग प्रदान करने हेतु संपादक मंडल का गठन कर दिया था। 1993 में जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान एवं जैन गजट के यशस्वी संपादक प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन - फिरोजाबाद की अध्यक्षता में अर्हत् वचन सलाहकार परिषद का गठन इस शोध पत्रिका की विकास यात्रा में मील का पत्थर साबित हुआ। लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों की सुगठित टीम के सार्थक प्रयासों से पत्रिका ने देश - विदेश की शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य श्री. नरेन्द्र प्रकाश जैन तथा सचिव डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन के एतद् विषयक प्रयासों हेतु मैं संस्था की ओर से आभार ज्ञापित करता हूँ। देवी अहिल्या वि. वि., इन्दौर द्वारा 1995 में मान्यता प्रदान किये जाने के पूर्व ही निदेशक मण्डल तथा परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया। विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति प्रो. ए. ए. अब्बासी, प्रो. जे. एन. कपूर, प्रो. आर. आर. नांदगांवकर, प्रो. पी. एन. मिश्र, प्रो. पारसमल अग्रवाल, प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल आदि मूर्धन्य शिक्षाविदों का विकास यात्रा के इस भाग में संस्था को सार्थक सहयोग प्राप्त हुआ। जैन विद्या के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान करने वाले विद्वानों के सहयोग से संस्था ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी पहचान बनाई है। देश - विदेश के अध्येता अब अकादमिक सूचनाओं एवं शोध मार्गदर्शन हेतु ज्ञानपीठ से सम्पर्क करने लगे हैं जो कि संस्था के लिये गौरवपूर्ण उपलब्धि है। कार्य निष्पादन की सुविधा तथा सम्बद्ध व्यक्तियों की कार्य अभिरूचि की दृष्टि से जनवरी 1999 में अर्हत् वचन सम्पादक मंडल (देखें - पृष्ठ 2) तथा निदेशक मंडल का 1999 - 2000 की अवधि हेतु पुनर्गठन किया जा चुका है। जिसकी घोषणा वर्ष - 11, अंक - 1, जनवरी 1999 में की गई थी। यहाँ मैं पुन: उदधृत कर रहा हूँ -

पुनर्गठित निदेशक मंडल (शोध समिति) -

1. प्रो. नवीन सी. जैन, पूर्व निदेशक - एकेडेमिक स्टाफ कालेज, इन्दौर
2. पंडित नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर
3. प्रो. आर. आर. नांदगांवकर, पूर्व कुलपति, नागपुर
4. प्रो. ए. ए. अब्बासी, पूर्व कुलपति, इन्दौर
5. प्रो. नलिन के. शास्त्री, कुलसचिव, बोधगया
6. प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल, अध्यक्ष - विज्ञान संकाय, मेरठ
7. डॉ. अनुपम जैन, सचिव, इन्दौर

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्शदात्री के व्यापक उपयोग को दृष्टि में रखते हुए कार्य परिषद के परामर्शानुसार अर्हत् वचन सलाहकार परिषद को भंग कर परामर्शदात्री समिति का पुनर्गठन किया जा रहा है। यह परामर्शदात्री समिति ही अब कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की समस्त गतिविधियों के संचालन हेतु परामर्श देने का कार्य सम्पन्न करेगी।

नवगठित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्शदात्री समिति (1999 - 2000)

1. श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल (अध्यक्ष)
   580, महात्मा गांधी मार्ग,
   इन्दौर - 452 001
2. डॉ. अनुपम जैन (सचिव)
   'ज्ञानछाया',
   डी - 14, सुदामा नगर,
   इन्दौर - 452 009

सदस्य

3. प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन
   104, नई बस्ती,
   फिरोजाबाद - 283 203
4. प्रो. जे. एन. कपूर
   766, न्यू फ्रेंड्स कालोनी,
   दिल्ली - 110 065
5. प्रो. राजाराम जैन, निदेशक
   महाजन टोली नम्बर - 2,
   आरा - 802 301 (बिहार)
6. प्रो. गोपीचन्द पाटनी
   एस.बी. - 10, ज.ला.ने. मार्ग, बापू नगर,
   जयपुर - 302 002 (राज.)
7. प्रो. एम. एल. कोठारी
   117, कंचन बाग,
   इन्दौर - 452 001
8. डॉ. टी. व्ही. जी. शास्त्री
   12 - 11 - 1418, बौद्ध नगर,
   सिकन्दराबाद - 500 361
9. प्रो. आर. एल. पाटनी
   8 / 4, मल्हारगंज,
   इन्दौर - 452 002
10. प्रो. महेश दुबे
    प्राध्यापक - गणित
    17, साउथ राजमोहल्ला,
    इन्दौर
11. डॉ. सज्जनसिंह 'लिश्क'
    व्याख्याता - गणित विभाग
    गवर्नमेन्ट इन सर्विस ट्रेनिंग सेन्टर,
    पटियाला - 147 001
12. डॉ. प्रकाशचन्द जैन
    91 / 1, गली नम्बर 3,
    तिलक नगर,
    इन्दौर - 452 001
13. श्री सुरेश जैन, आई.ए.एस.
    30 निशात कालोनी,
    भोपाल
14. डॉ. एन. पी. जैन
    पूर्व राजदूत
    ई - 50, साकेत नगर,
    इन्दौर
15. पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी
    64 / 3, मल्हारगंज,
    इन्दौर - 452 002
16. श्री कैलाशचन्द चौधरी
    39, सीतलामाता बाजार,
    इन्दौर - 452 002
17. श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल
    अनोप भवन,
    580, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
    इन्दौर - 452 001
18. श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल
    अनोप भवन,
    580, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
    इन्दौर - 452 001
19. प्रो. नवीन सी. जैन (पदेन - निदेशक)
    46, पद्मावती कालोनी,
    इन्दौर - 452 001
20. प्रो. पी. एन. मिश्र (पदेन - वि. वि. के प्रतिनिधि)
    निदेशक - प्रबन्ध अध्ययन संस्थान
    देवी अहिल्या विश्वविद्यालय,
    इन्दौर - 452 001
21. पं. जयसेन जैन (पदेन - महावीर ट्रस्ट, इन्दौर के प्रतिनिधि)
    201, अमित अपार्टमेन्ट,
    1 / 1, पारसी मोहल्ला, छावनी,
    इन्दौर - 452 001

21.7.99

देवकुमारसिंह कासलीवाल

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 9 - 15

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धान्त

■ अनिल कुमार जैन *

कुछ वर्षों से 'क्लोनिंग' एक बहुचर्चित विषय रहा है। खासतौर पर जब से वैज्ञानिकों ने एक भेड़ का क्लोन तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है तब से नाना प्रकार की अटकलें लगाई जाती रही हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने यह कह कर कि मानव का क्लोन भी दो वर्षों के अन्दर तैयार कर लिया जायेगा, इस विषय की ओर आम लोगों का ध्यान भी आकर्षित कर दिया है। कई वैज्ञानिक तथा अनेकों बुद्धिजीवी इस विवाद में उलझे हुए हैं कि क्या मानव का क्लोन भी तैयार किया जा सकता है? क्या मानव क्लोन तैयार करना एक अनैतिक कृत्य नहीं होगा? आजकल इन्टरनेट पर भी इसके समर्थन और विरोध में मत जुटायें जा रहे हैं। कई विकसित देश भी इस विवाद में कूद पड़े हैं।

क्लोनिंग ने वैज्ञानिकों तथा बुद्धिजीवियों को तो प्रभावित किया ही है, साथ ही दार्शनिकों एवं धार्मिक नेताओं को भी चक्कर में डाल दिया है। जो प्रचलित धार्मिक धारणायें हैं उनके लिये भी क्लोनिंग एक चुनौती भरा विषय बन गया है। इसलिये क्लोनिंग को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में पारिभाषित करना अपेक्षित हो गया है। इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले हमें क्लोनिंग तथा उसकी तकनीक के बारे में जानना होगा।

क्लोनिंग क्या है?

किसी जीव विशेष का जेनेटिकल प्रतिरूप पैदा होना क्लोनिंग कहलाता है। क्लोन उस जीव विशेष का मात्र नवजात शिशु ही नहीं होता बल्कि यह उस जीव का एक प्रकार से कार्बन कापी होता है। जन्म की सामान्य प्रक्रिया में भ्रूण का निर्माण नर के शुक्राणु (Sperm Cell) तथा मादा के अण्डाणु (Egg Cell) के संगठन (Fission) से होता है तथा इस भ्रूण की कोशिका (Cell) के केन्द्रक (Neuteus) में जो गुणसूत्र (Cromosomes) पाये जाते हैं उनमें से कुछ गुणसूत्र नर के तथा कुछ गुणसूत्र मादा के होते हैं। सामान्य जन्म की यह प्रक्रिया लैंगिक (Sexual) प्रजनन कहलाती है। क्लोनिंग की प्रक्रिया में भ्रूण का निर्माण कुछ अलग ढंग से कराया जाता है (इसका हम आगे वर्णन करेंगे) तथा इस भ्रूण की कोशिका के केन्द्रक में सारे के सारे गुणसूत्र किसी एक (नर या मादा) के होते हैं। जिस जीव का क्लोन तैयार करना हो, उसी जीव के सारे गुण सूत्र क्लोन की कोशिका के केन्द्रक में भी होते हैं। इस प्रकार क्लोन में आनुवांशिकी के वे सारे गुण मौजूद होते हैं जो उसके डोनर पेरेन्ट (Doner Parent) नर या मादा के होते हैं। क्लोनिंग की प्रक्रिया वस्तुतः अलैंगिक (Asexual) प्रजनन की प्रक्रिया है क्योंकि इसमें नर या मादा किसी एक की कोशिका के केन्द्रक से ही जीव पैदा होता है-; इस प्रकार पैदा हुए जीव या जीवों का समूह ही क्लोन कहलाता है तथा वह प्रकिया जिससे क्लोन तैयार होते हैं क्लोनिंग कहलाती है।

पशुओं में क्लोनिंग

पशुओं में क्लोनिंग वनस्पतियों (पौधों) में क्लोनिंग के मुकाबले एक क्लिष्ट प्रक्रिया है क्योंकि पौधों की कोशिकाओं का ढांचा अपेक्षाकृत सरल होता है। कई नवजात पौधों

* प्रबन्धक - भारतीय तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम। निवास - बी - 26, सूर्यनारायण सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने, साबरमती, अहमदाबाद - 5

की कोशिकाओं में यह गुण होता है कि वे द्विगुणन द्वारा अपनी वंश वृद्धि कर सकते हैं। इस विशेष गुण के कारण ही कई वनस्पतियों में क्लोनिंग की प्रक्रिया बहुत प्राचीन है। कलम द्वारा पौधे लगाना इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। कई एक कोशिय सूक्ष्म जीव भी यही प्रक्रिया अपनाते हैं।

पशुओं के क्लोन तैयार करने की कोशिशें भी काफी समय से होती रही हैं। वैज्ञानिकों ने पचास के दशक में मेढकों के क्लोन बनाने के कई प्रयोग किये। सन् 1952 में इस क्षेत्र में आंशिक सफलता भी प्राप्त कर ली। लेकिन पूरी तरह से साठ के दशक में ही सफल हो पाये तथा मेढ़क के 30 क्लोन तैयार कर डाले।

स्तनधारी पशुओं में क्लोनिंग और कठिन प्रक्रिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन पशुओं के अण्डाणु (Egg Cell) बहुत छोटे तथा अधिक भंगुर होते हैं। इस प्रक्रिया में मेढ़क के प्रत्यारोपण के लिये एक खास सूक्ष्म शल्य चिकित्सा (Micro Surgery) करनी पड़ती है। सत्तर के दशक में खरगोशों तथा चूहों के क्लोन तैयार करने के कई प्रयोग किये गये तथा अन्ततः वैज्ञानिक सफल भी रहे। नब्बे के दशक में भेड़ के क्लोन तैयार करने के कई प्रयोग किये गये। लेकिन सबसे अधिक तहलका तब मचा जब एडिनबर्ग (स्काटलैण्ड) में स्थित 'रोसलिन इन्स्टीट्यूट' के वैज्ञानिक डॉ. इआन विलमट ने फरवरी 1996 को **डॉली** के रूप में एक पूर्ण स्वस्थ भेड़ का क्लोन पैदा कर लिया। इसे एक महान उपलब्धि के रूप में लिया गया क्योंकि इससे मानव क्लोन तैयार करने का रास्ता और अधिक स्पष्ट हो गया।

क्लोन बनाने की तकनीक

क्लोनिंग की चर्चा आगे बढ़ाने से पहले हमें कोशिकाओं तथा स्तनधारियों में सामान्य प्रजनन की प्रक्रिया को थोड़ा समझना होगा। प्रत्येक पशु, वनस्पति में अनेकों कोशिकायें पायी जाती हैं। मनुष्य के शरीर में इन कोशिकाओं की कुल संख्या सौ खरब (10^{13}) तक हो सकती है। प्रत्येक कोशिका अपने आप में एक अलग अस्तित्व वाला पूर्ण जीव होता है। यह वैसे ही एक अलग जीव है जैसे कि हम और आप। कोशिका के केन्द्र में एक नाभिक होता है जिसे केन्द्रक भी कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर इस जीव के गुण सूत्र (क्रोमोसोम्स) होते हैं। मनुष्य की कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है। इन गुणसूत्रों में ही आनुवांशिकी के सभी गुण मौजूद होते हैं। क्रोमोसोम्स (गुणसूत्रों) की रचना डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. नामक रसायनों से निर्मित होती है। इन गुणसूत्रों पर ही जीन्स स्थित होते हैं। कोशिका के केन्द्रक के चारों ओर एक जीव द्रव होता है जिसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं।

नर के शुक्राणु तथा मादा के अण्डाणु भी परिपक्व (Maturel) कोशिकायें होती हैं। स्तनधारी पशुओं में लैंगिक प्रजनन होता है। इस प्रक्रिया में शुक्राणु अण्डाणु को फलित या निषेचित कर देता है तथा एक नई कोशिका का निर्माण होता है। इस नई कोशिका में पुनः द्विगुणन करने की क्षमता होती है जिससे वह भ्रूण में परिवर्तित हो जाता है। इस नई निषेचित या फलित कोशिका के केन्द्रक में गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) की संख्या तो 46 ही होती हैं, लेकिन इसमें आधे गुणसूत्र नर के तथा आधे मादा के होते हैं। इसके विपरीत क्लोनिंग द्वारा उत्पन्न नई कोशिका में सारे के सारे गुणसूत्र किसी एक के ही होते हैं।

स्तनधारी पशुओं के क्लोन पैदा करने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है। इसके

लिये सर्वप्रथम मादा के एक स्वस्थ अण्डाणु को काम में लिया जाता है। इस अण्डाणु में से विशेष तकनीक द्वारा केन्द्रक को अलग कर दिया जाता है तथा इस केन्द्रक या नाभिक विहीन कोशिका को एक सुरक्षित स्थान पर रख लिया जाता है। अब हमें जिस जीव का क्लोन् तैयार करना है (जिसे डोनर - पेरेन्ट कहते हैं) उसकी त्वचा (Skin) में से एक कोशिका अलग कर ली जाती है। फिर इस कोशिका के केन्द्रक (नाभिक) को बड़ी सावधानीपूर्वक अलग कर लिया जाता है। इस केन्द्रक को पूर्व में सुरक्षित रखी केन्द्रक - विहीन - कोशिका में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक नई कोशिका पैदा हो जाती है जिसका केन्द्रक डोनर पेरेन्ट की कोशिका का केन्द्रक होता है। इस प्रकार इस नई कोशिका में गुणसूत्र वे ही होते हैं जो कि डोनर - पेरेन्ट में होते हैं। यह नई कोशिका द्विगुणन द्वारा भ्रूण में परिवर्तित हो जाती है। इस भ्रूण को किसी भी मादा के गर्भाशय में स्थित कर दिया जाता है जहाँ वह सामान्य रूप से विकसित होने लगता है। इस प्रकार जो नवजात पैदा होता है उसमें गुणसूत्र वे ही होते हैं जो कि डोनर - पेरेन्ट के होते हैं ; अत: इसकी शक्ल - सूरत हूबहू डोनर - पेरेन्ट जैसी ही होती है। यानि कि यह डोनर - पेरेन्ट की कापी ही होगा।

इस प्रकार हम जिसकी प्रतिलिपि (कापी, क्लोन) तैयार करना चाहते हैं उसका केन्द्रक मादा के अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा। यदि हम नर का क्लोन तैयार करना चाहते हैं तो उसकी कोशिका का केन्द्रक और यदि मादा का क्लोन चाहते हैं तो मादा की कोशिका का केन्द्रक किसी मादा के अण्डाणु (कोशिका) में प्रतिस्थापित करना होगा।

क्लोनिंग से उठे सवाल

डॉली के रूप में भेड़ का क्लोन उपरोक्त विधि (तकनीक) द्वारा ही पैदा किया गया। लेकिन इस क्लोनिंग के सफल परीक्षण से कई दार्शनिक एवं धार्मिक कठिनाईयाँ सामने आई हैं जिनका स्पष्टीकरण अपेक्षित है -

1. चूंकि क्लोन में आनुवांशिकी के हूबहू वे सारे गुण होते हैं जो कि डोनर - पेरेन्ट के हैं, तो क्या क्लोन डोनर का ही एक अंश है?
2. चूंकि क्लोनिंग द्वारा जीव पैदा होने की प्रक्रिया में नर तथा मादा दोनों का होना आवश्यक नहीं रह गया है, अत: बिना नर के भी स्तनधारी जीव पैदा कराया जा सकता है। तो क्या जैन धर्म में वर्णित गर्भ - जन्म की अवधारणा गलत है?
3. क्या क्लोन भेड़ (डॉली) सम्मूर्च्छन जीव है?
4. क्या प्रयोगशाला में भी मनुष्य पैदा किया जा सकेगा?
5. जैन धर्मानुसार जीव के शरीर की रचना अंगोपांग नामकर्म के उदय से होती है, लेकिन क्लोनिंग की प्रक्रिया में शरीर की रचना हम मनचाहे ढंग से बना सकते हैं। हम जिस किसी जीव की शक्ल तैयार करना चाहें, कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में जैन धर्म में वर्णित नाम कर्म की स्थिति क्या होगी?

क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धान्त

उपरोक्त प्रश्नों का हल प्राप्त करने के लिये हमें विषय का और अधिक विश्लेषण करना होगा तथा कर्म सिद्धान्त को भी समझना होगा।

सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर लेना चाहिये कि क्लोन किसी भी जीव का या डोनर - पेरेन्ट

का अंश नहीं है। क्लोन का अलग अस्तित्व है और डोनर - पेरेन्ट का अलग। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारे शरीर में स्थित प्रत्येक कोशिका भी अपने आप में एक परिपूर्ण शरीर युक्त स्वतंत्र जीव है तथा हमसे प्रत्येक दृष्टि में भिन्न है। उसका वैसा ही अलग अस्तित्व है जैसा कि आपका और हमारा। अत: जब प्रत्येक कोशिका का अलग अस्तित्व है तो उससे विकसित भ्रूण तथा फिर भ्रूण से विकसित क्लोन डोनर - पेरेन्ट का अंश कैसे हो सकता है? अत; क्लोन अपने आप में डोनर - पेरेन्ट से बिल्कुल अलग अस्तित्व वाला जीव है। उसका आयुष्य, उसकी भावनाएँ तथा उसका सुख - दुख भी अपने डोनर - पेरेन्ट से बिल्कुल भिन्न होगा। यह बात डॉली (जो कि भेड़ का क्लोन है) के गर्भ धारण करने तथा फिर उसके माता बनने से और अधिक स्पष्ट हो गई है।

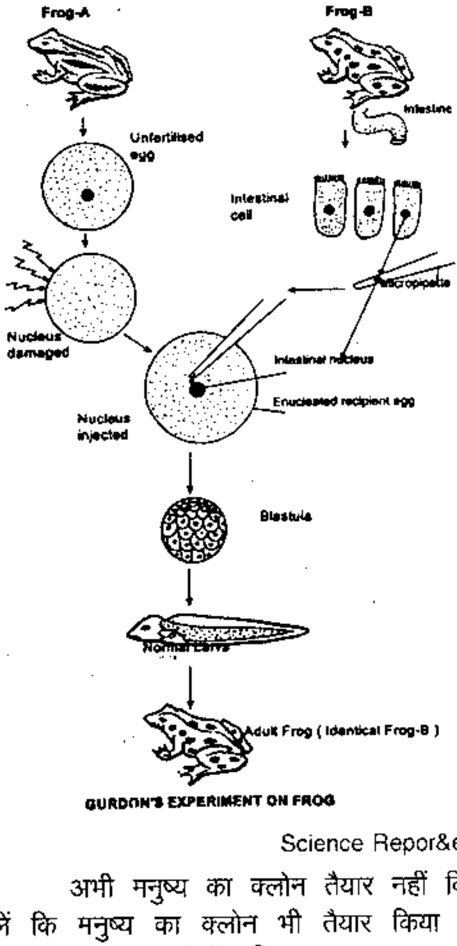

GURDON'S EXPERIMENT ON FROG

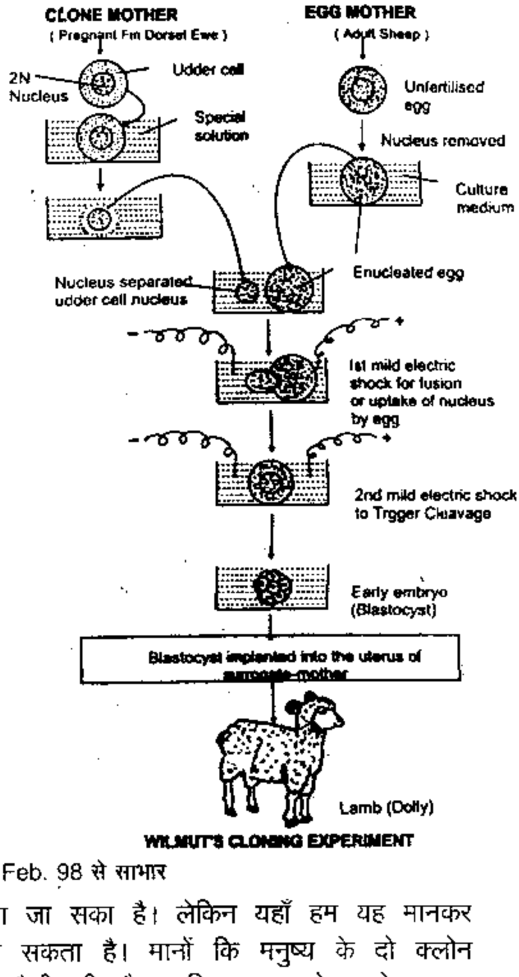

WILMUT'S CLONING EXPERIMENT

Science Repor&er, Feb. 98 से साभार

अभी मनुष्य का क्लोन तैयार नहीं किया जा सका है। लेकिन यहाँ हम यह मानकर चलें कि मनुष्य का क्लोन भी तैयार किया जा सकता है। मानों कि मनुष्य के दो क्लोन तैयार किये गये। दोनों की शक्ल - सूरत एक जैसी ही है। यदि एक क्लोन को अच्छा खाने - पीने को मिले तथा अच्छा अनुकूल वातावरण मिले तथा दूसरे क्लोन को न तो अच्छा खाने - पीने को मिले और न ही अच्छा वातावरण मिले तो निश्चित रूप से बड़े होने पर दोनों के व्यक्तित्व में अन्तर आ जायेगा। दोनों का विकास अलग - अलग होगा

ही। और यदि मानों कि दोनों को समान वातावरण मिले, दोनों को विकास के समान अवसर मिलें तो भी दोनों का व्यक्तित्व अलग - अलग ही होगा, मात्र शक्ल - सूरत एक जैसी होगी।

आज भी हम देखते हैं कि दो जुड़वें भाई शक्ल - सूरत में एक से होते हैं, दोनों में अन्तर कर पाना मुश्किल हो जाता है, फिर भी उनमें से एक अधिक पढ़ - लिख जाता है तथा दूसरा कम पढ़ा - लिखा होता है। एक सर्विस करने लगता है तथा दूसरा निजी व्यवसाय। आगे चलकर उनकी जिम्मेदारियाँ भी अलग - अलग हो जाती हैं जिससे उनके व्यवहार में भी काफी अन्तर आ जाता है। इस प्रकार दो एक सी शक्ल वाले भाइयों का व्यक्तित्व भी अलग - अलग बन जाता है। इसी तरह दो एक जैसे क्लोन तथा डोनर - पेरेन्ट के बीच भी अन्तर रहेगा।

दूसरा प्रश्न क्लोन के जन्म को लेकर है। यह सही है कि बिना नर के सहयोग के भी जीव पैदा किया जा सकता है। मात्र मादा द्वारा भी जीव पैदा हो सकता है, लेकिन उस स्थिति में पैदा हुआ क्लोन (जीव) मादा ही होगा, नर नहीं। इस प्रकार जो भी डोनर - पेरेन्ट होगा वही क्लोन भी होगा। यदि डोनर - पेरेन्ट नर है तो क्लोन भी नर होगा और यदि डोनर - पेरेन्ट मादा है तो क्लोन भी मादा ही होगा। स्तनधारियों के क्लोन बनाने की प्रक्रिया में यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्लोन के भ्रूण को मादा के गर्भाशय में रखा जाता है। तत्पश्चात गर्भाशय के अन्दर ही बच्चे का विकास होता है तथा गर्भकाल पूरा होने के बाद ही क्लोन बच्चा पैदा होता है। यहाँ गर्भ की प्रक्रिया को छोड़ा नहीं गया है। अत: जैन धर्म में जन्म के आधार पर गर्भज आदि जो भेद किये गये हैं वहाँ कोई विसंगति नहीं आती है।

जहाँ तक स्तनधारी जीवों में बिना नर के क्लोन तैयार होने का प्रश्न है, यहाँ एक बात यह अवश्य ध्यान रखनी चाहिये कि मादा के अण्डाणु मात्र से ही जीव - क्लोन पैदा नहीं होता है, बल्कि उस अण्डाणु के केन्द्रक को दूसरी (किसी अन्य) कोशिका के केन्द्रक द्वारा विस्थापित कराया जाता है तभी भ्रूण पैदा होता है। अत: भ्रूण बनाने के लिये दो कोशिकाओं का होना आवश्यक है जिनमें से एक मादा का अण्डाणु तथा दूसरी कोई अन्य कोशिका होना चाहिये। इस प्रकार दो अलग - अलग कोशिकाओं के सहयोग से ही क्लोन बनना सम्भव हो सका है।

अत: हमें गर्भ जन्म की प्रक्रिया की जैन मान्यता में इतना जोड़ लेना होगा कि गर्भ जन्म वाले जीव मादा के गर्भ से ही पैदा होंगे लेकिन वे बिना नर के सहयोग के भी पैदा हो सकते हैं। इस स्थिति में वे मादा ही होंगे लेकिन उनके पैदा होने में भी दो अलग - अलग कोशिकाओं - एक अण्डाणु तथा दूसरी अन्य का होना आवश्यक है।

यहाँ से यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि भेड़ के क्लोन डॉली का जन्म भी इसी प्रक्रिया से हुआ था। अत: उसका जन्म भी गर्भ - जन्म ही था। कुछ लोग डॉली को सम्मूर्च्छन जीवों की श्रेणी में रखते हैं, लेकिन वह बिल्कुल गलत है। डॉली भी अब माँ बन चुकी है, वह भी आम भेड़ों की तरह। इस घटना ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि डॉली सम्मूर्च्छन जीव नहीं है। यदि डॉली को सम्मूर्च्छन माना गया तो यह एक प्रश्न और पैदा हो जायेगा कि क्या सम्मूर्च्छन जीवों से भी गर्भ जन्म होना सम्भव है?

यह मानना सही नहीं है कि मनुष्य को प्रयोगशाला में भी पैदा किया जा सकता

है। अभी तक प्रयोगशाला में स्तनधारी जीव पैदा नहीं किया जा सका है। हाँ, टेस्टट्यूब में भ्रूण तो तैयार किया जा सका है, लेकिन उसका विकास मादा के उदर (गर्भाशय) में ही सम्भव हो सका है। क्योंकि उसके विकास के लिये आवश्यक ताप, दाब तथा खुराक मादा द्वारा ही उपलब्ध कराई जा सकती है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि भेड़ के क्लोन (डॉली) को भी टेस्टट्यूब बेबी जैसा ही मानना चाहिये। चूंकि क्लोन के भ्रूण को प्रयोगशाला में (टेस्टट्यूब) तैयार किया गया, अत: इसे टेस्टट्यूब बेबी माना जा सकता है।

अब एक अन्तिम प्रश्न यह रहता है कि जैन धर्म के हिसाब से जीव के शरीर की रचना उसके नाम कर्म के कारण होती है। कोई जीव कैसी शक्ल - सूरत प्राप्त करेगा, इसका निर्धारण इसी नाम कर्म से होता है। लेकिन यहाँ तो क्लोन के शरीर की रचना अब अपने ही हाथों में आ गई है। हम जैसी शक्ल - सूरत बनाना चाहें बना सकते हैं।ऐसी स्थिति में नामकर्म की अवधारणा तो अर्थहीन हो गई है। लेकिन यह मान्यता उचित नहीं है। वस्तुस्थिति क्या है?, यह समझने के लिये हमें कर्म - सिद्धान्त पर थोड़ा ध्यान देना पड़ेगा।

सबसे पहले तो हमें यह स्पष्ट कर लेना चाहिये कि प्रत्येक घटना मात्र कर्म से ही घटित नहीं होती है। कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं। यदि हम कर्मों के अधीन ही सब कुछ घटित होना मान लेंगे तो यह वैसी ही व्यवस्था हो जायेगी जैसी कि ईश्वरवादियों की है कि जो कुछ होता है वह ईश्वर की आज्ञा से होता है या फिर उन नियतिवादियों की स्थिति है कि सब कुछ नियति के अधीन है, हम उसमें कुछ भी फेरफार नहीं कर सकते हैं। यदि कर्म ही सब कुछ हो जाये तो उनको नष्ट करने के लिये न तो पुरुषार्थ का ही महत्व रह जायेगा और न ही मोक्ष सम्भव होगा। क्योंकि जैसे कर्म होंगे वैसा उनका उदय होगा और उस उदय के अनुरूप ही हम कार्य करेंगे तथा नये कर्मों का बन्ध करेंगे। इससे तो पुरुषार्थ तथा मोक्ष की बात ही गलत सिद्ध हो जायेगी। अत; यह तय हुआ कि कर्म ही सब कुछ नहीं है।

कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है। कर्म पर भी अंकुश है। कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। भगवान महावीर ने कहा - 'किया हुआ कर्म भुगतना पड़ेगा', यह सामान्य नियम है, लेकिन इसमें भी कुछ अपवाद है। कर्मों में उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण तथा संक्रमण सम्भव है जिसके कारण कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि पुरुषार्थ द्वारा कर्मों की निर्जरा समय से पहले भी की जा सकती है। कर्मों की काल मर्यादा और तीव्रता को बढ़ाया और घटाया जा सकता है तथा कर्म एक भेद से सजातीय दूसरे भेद में भी बदल सकता है। उदय में आ रहे कर्मों के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिये दबाया जा सकता है तथा काल विशेष के लिये उन्हें फल देने में अक्षम भी किया जा सकता है, इसे उपशम कहते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार 'संक्रमण का सिद्धान्त' जीन (Gene) को बदलने का सिद्धान्त है। एक विशेष बात यह और ध्यान देने योग्य है कि कर्मों का विपाक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के अनुसार होता है। यह विपाक निमित्त के आश्रित है तथा उसी के अनुरूप यह फल देता है। यदि दो व्यक्तियों को एक जैसा असातावेदनीय कर्म का उदय हो, उनमें से एक धार्मिक प्रवचन या भजन सुनने में मस्त रहा हो तथा दूसरा अकेला बिना किसी काम के एक कमरे में बैठा है तो दूसरे व्यक्ति को पहले के मुकाबले

असातावेदनीय कर्म अधिक सतायेगा। इसका एक मनावैज्ञानिक कारण भी है।

इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तित्व के निर्माण में कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं बल्कि आनुवंशिकता, परिस्थिति, वातावरण, भौगोलिकता, पर्यावरण, ये सब मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार पर असर डालते हैं। अत: शक्ल - सूरत के निर्माण में मात्र नाम कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं। मनुष्य के रूप - रंग पर देश - काल का प्रभाव भी आसानी से देखा जा सकता है। एक ही माता से दो बच्चे जन्म लेते हैं - एक ठण्डे देश में तथा दूसरा गर्म देश में। ठण्डे देश में जन्म लेने वाला बच्चा अपेक्षाकृत गोरा हो सकता है। इतना ही नहीं, यदि कोई व्यक्ति ठण्डे देश में रहना प्रारम्भ कर दे तो उसके रंग में भी परिवर्तन आ सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार जीन्स (Genes) तथा रासायनिक परिवर्तन भी व्यक्तित्व के निर्माण में अपना प्रभाव डालते हैं।

आयु कर्म भी एक कर्म है, लेकिन बाह्य निमित्त, जैसे जहर आदि के सेवन से आयुष्य को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स) या जीन्स में परिवर्तन कर दिया जाय तो उससे शक्ल - सूरत में परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार अकेले नाम कर्म ही यह तय नहीं करता कि किसी जीव (या मनुष्य) की शक्ल - सूरत कैसी होगी बल्कि बाह्य परिस्थितियाँ भी इसमें परिवर्तन कर सकती हैं। कोशिका के केन्द्रक को विशेष प्रकार से परिवर्तित करके यदि हम एक सी शक्ल - सूरत वाले जीव पैदा करते हैं तो इसमें कर्म सिद्धान्त के अनुसार कोई विसंगति नहीं आती है क्योंकि कर्मों में संक्रमण आदि सम्भव है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कर्म सिद्धान्त के अनुसार एक ही प्रकार की शक्ल - सूरत वाले जीव पैदा कर देना या क्लोनिंग के दौरान कोशिका के केन्द्रक (Neucleus) को परिवर्तित कर देना संभव है। अत: क्लोनिंग की प्रक्रिया कर्म सिद्धान्त के लिये चुनौती नहीं है बल्कि कर्म सिद्धान्त को व्यवस्थित तरीके से समझ लेने पर इस प्रक्रिया की व्याख्या कर्म सिद्धान्त के आधार पर आसानी से की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं लेख -

1. 'From Cell to Cloning', P.C. Joshi, Science Reporter, Feb. 98.
2. 'Cloning', Domen R. Olrzowy, The New Book of Popular Science, Vol-3, Grolier Inc., 89.
3. 'The Cell', John Pfeiffer, (IInd Edition, 88), Life Time Books Inc., Hongkong.
4. 'जैन धर्म और दर्शन', मुनि प्रमाण सागर।
5. 'कर्मवाद', आचार्य महाप्रज्ञ।
6. 'क्या अकाल मृत्यु सम्भव है ?', डॉ. अनिलकुमार जैन, तीर्थंकर, इन्दौर, जुलाई 94.

प्राप्त - 1.12.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं विशेषतः जैन विद्याओं के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धत्ति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उनकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 30 जून 1999 तक पुस्तकालय में 6444 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं 1000 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। समस्त पुस्तकों के ग्रन्थानुक्रम से इन्डेक्स कार्ड तो उपलब्ध हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलतः किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 150 पत्र-पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1-1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रंथालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से संचालित प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 17 - 22

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन कर्म सिद्धान्त की जीव वैज्ञानिक परिकल्पना

■ अजित जैन 'जलज' *

सारांश

भारतीय संस्कृति में कर्म सिद्धान्त की अवधारणा आदिकाल से धर्म दर्शन से लेकर जन - जन तक में रची बसी हुयी है। जिसके कारण व्यक्ति और समाज, एक आदर्श आचार संहिता में बंधा रहा है। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युग में परम्परा एवं श्रद्धा का स्थान प्रमाण तथा तथ्य ने ले लिया है जिससे यह कर्म सिद्धान्त अब अंध विश्वास का परिचायक बनता जा रहा है। ऐसे विकट समय में कर्म सिद्धान्त की वैज्ञानिकता को लेकर अनेकों विद्वानों ने अपने मत दिये हैं। इसी तारतम्य में एक नयी सोच के रूप में इस शोध पत्र में जैन कर्म सिद्धान्त के गहन, गूढ़ सिद्धान्त तथा जीव विज्ञान के जीवन नियामक मूलभूत सिद्धान्तों के बीच तथ्यात्मक संबंध स्थापित करके नूतन परिकल्पना प्रस्तुत की गयी है जिस पर सार्थक अन्वेषण होने पर ऐसा कुछ प्राप्त किया जा सकता है जिससे धर्म, विज्ञान के बल पर सर्व स्वीकार्य बन सकता है तथा इस प्रकार से एक सहज, सुखी, सरल समाज का सृजन हो सकेगा।

प्रस्तावना

अनेकों धर्मों, दर्शनों में कर्म सिद्धान्त दिया गया है जिसमें से जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत कर्म सिद्धान्त अपने आप में अद्भुत, वैज्ञानिक तथा सटीक लगता है। जैन कर्म सिद्धान्त पर अब तक अनेक विद्वान विभूतियाँ शोध पत्र प्रस्तुत कर चुके हैं जिनमें से आचार्य कनकनंदी का **'कर्म सिद्धान्त का वैज्ञानिक विश्लेषण'**, **Eco-Rationality and Jain Karma Theory** by Mr. Krivov Sergui, पारसमल अग्रवाल का **'कर्म सिद्धान्त एवं भौतिक विज्ञान का क्वाण्टम सिद्धान्त'**, **Karmic Theory in Jain Philosophy** by Manik Chand Gangwal, जे. डी. जैन का **'कर्मबन्धन का वैज्ञानिक विश्लेषण'** आदि प्रमुख हैं। लेकिन जीवन के वैज्ञानिक आधार जीवन विज्ञान को गहराई से संभवतः नहीं देखा गया है। प्रस्तुत प्रयास में जीव विज्ञान की विभिन्न शाखाओं आणविक जीव विज्ञान, आनुवंशिकी, कोशिका विज्ञान के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ जैन कर्म सिद्धान्त की आस्रव, बंध की अवधारणाओं से समान्तरता / समानता स्थापित कर जैन कर्म सिद्धान्त की जीव वैज्ञानिक परिकल्पना निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत की गयी है –

1. जीवन का जैव वैज्ञानिक आधार
2. जीवन का जैन कर्म सिद्धान्त
3. कर्म सिद्धान्त की जीव वैज्ञानिकता

* वीर मार्ग, ककरवाहा, टीकमगढ़ - 472 010 (म.प्र.)

सिद्धान्त

जैन दर्शन का सर्वमान्य सार, सूत्रों के रूप में 'तत्वार्थ सूत्र' में दिया गया है। उन सूत्रों को कोशिका विज्ञान के अन्तर्गत कोशिका, केन्द्रक संरचना, जीन्स एवं जैनेटिक कोड के परिप्रेक्ष्य में देखने पर एक नयी दृष्टि मिलती है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि कर्म कहीं ना कहीं जीवन नियामक इकाइयों जीनों (Genes) से अवश्य ही जुड़े हुए हैं।

विश्लेषण तथा विवेचण

जीवन का जीव वैज्ञानिक आधार - विभिन्न प्रकार की अनेकों कोशिकाओं से मिलकर जीवों का शरीर बना होता है। समान कोशिकाओं का समूह मिलकर ऊतक बनता है। विभिन्न अंग मिलकर अंग तंत्र बनाते हैं। अंग तंत्रों का सम्मिलित रूप किसी भी जीव के जीवन को संचालित करता है। [1]

प्रत्येक कोशिका में एक केन्द्रक होता है, केन्द्रक के अन्दर गुणसूत्र होते हैं जो कि DNA से मिलकर बने हुए होते हैं। गुणसूत्र ही हम सभी जीवों के विभिन्न गुणों का निर्धारण करते हैं। DNA तथा शर्करा क्षारक तथा फास्फेट नामक तीन रसायनों से मिलकर बनते हैं जिनमें से चार क्षारकों के विभिन्न प्रकार से लगे रहने से ही विभिन्न गुण उत्पन्न होते हैं। ये क्षारक तीन की तिकड़ी में लगे होते हैं तथा जेनेटिक कोड कहलाते हैं। ये जेनेटिक कोड निश्चित क्रम में व्यवस्थित होकर जीन की रचना करते हैं जो कि गुण सूत्रों पर लगे रहते हैं। इन जीन तथा जेनेटिक कोड को हम प्रत्येक जीव का भाग्य या भाग्य विधाता कह सकते हैं।

प्रत्येक जीव की रचना एवं कार्य उसके गुणसूत्रों के अनुसार ही होते हैं। जीवन संचालक क्रियाओं के प्रत्येक चरण में किसी ना किसी एंजाइम की आवश्यकता होती है जिसका निर्माण किसी विशिष्ट जीन के द्वारा ही होता है। [2] इन जीनों में परिवर्तन होते रहते हैं जिन्हें कि उत्परिवर्तन कहते हैं जिसके अनुसार उस जीव के गुणों में भी परिवर्तन आ जाता है।

जीवन संचालक जैन कर्म सिद्धान्त - इस विश्व में कार्माण वर्गणा ठसाठस भरी हुयी है। उसमें कर्म रूप परिणमन करने की योग्यता भी है। [3] कर्म परमाणु के योग के द्वारा आकर्षित होकर आने को आस्रव कहते हैं। [4]

जीव के उपयोग (राग, द्वेष, अध्यवसाय) का निमित्त प्राप्त करके कर्म वर्गणायें जीव के प्रदेशों में संक्लेष रूप से बंध जाती हैं इसे कर्म बंध कहते हैं। [5] संसारी जीवों के प्रत्येक भव में प्रत्येक समय में कर्म बंध होता है। [6]

जीव के साथ कर्म बंध होने के लिये पुद्गल परमाणुओं के बंध योग्य गुणों के साथ - साथ जीव में भी बंध होने योग्य गुणों की आवश्यकता होती है। [7]

ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों के समूह को कार्मणकाय कहते हैं। [8] यद्यपि कार्माण शरीर आकार रहित है तथापि मूर्तिमान पुद्गलों के संबंध से अपना फल देता है। [9]

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है। [10] सुख, दुख, जीवन एवं मरण में पुद्गलों के उपकार हैं जो कि विभिन्न कर्मों के उदय से होते हैं। [11] पुद्गल, रस, गन्ध और वर्ण वाले होते हैं। [12] विश्व में दृश्यमान एवं पांचों इन्द्रियों के जितने द्रव्य

हैं वे सब पुद्गल की विभिन्न स्थल पर्यायें हैं। इन स्थूल पर्यायों का मूलभूत तत्व परमाणु है।[13]

कर्मों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त 48 मिनिट से लेकर 70 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।[14] जिस कर्म का जैसा नाम है उसी के अनुरूप फल प्राप्त होता है। पूर्वोपार्जित कर्मों का झड़ जाना ही निर्जरा है।[15]

कर्मों की जीव वैज्ञानिकता – इस प्रकार से जीव के विभिन्न कार्य, गति, दशायें जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार कर्म परमाणुओं के द्वारा तथा जीव विज्ञान के अनुसार जीनों (Genes) के द्वारा निर्धारित होती है और मेरी सोच के अनुसार कर्म तथा जीन एक दूसरे से संबंधित / समान / समानान्तर / सहकारी है।

पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार प्रत्येक जीव को विभिन्न प्रकार का शरीर मिलता है। कर्म के हिसाब से किसी का आँखें नहीं हैं तो कोई मन्द बुद्धि का होता है। कोई छोटा होता है तो कोई बड़ा, कोई गोरा होता है तो कोई काला और यह सब कार्य जीन के द्वारा होता है। जीन के अनुरूप ही जीव की संरचना होती है तथा निश्चित जीनों के कारण ही पुरुष, स्त्री, नपुंसक लिंग का निर्माण होता है। अत: प्रत्येक जीव का पूरा भाग्य इन कर्मों और जीनों के अनुसार ही निर्धारित होता है।

एक तरह से कर्म का ही स्थूल रूप जीन मान सकते हैं तथा कार्माण वर्गणाओं (पुद्गल परमाणुओं) को जेनेटिक कोड के समकक्ष मान सकते हैं। जैनेटिक कोड के मूलभूत यौगिक शर्करा, फास्फेट और क्षारक भी अंतत: नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन आदि तत्वों से मिलकर बने हैं जो कि हमारे वातावरण में भी व्याप्त हैं। **मेरे मत से अदृश्य पुद्गल कार्माण वर्गणाओं के अनुसार ही जीन की संरचना होती है।**

भौतिकी और कर्म – जब जीव विभिन्न प्रकार के क्रियाकलाप करता है तो वह विभिन्न कर्म परमाणुओं को आकृष्ट करके अपने चारों ओर बांध लेता है। भौतिकी के एक सिद्धान्त के अनुसार समस्त्त जड़ पदार्थ अपने वर्तमान के तापक्रम के अनुसार इलेक्ट्रोमैग्नेटिक किरणें विकीर्ण करते हैं। जब कोई जीव किसी भी बाह्य वस्तु, जड़ या चेतन की तरफ उन्मुख होता है तो ये जीव अपनी कषाय व योग की तीव्रता मंदता के अनुसार अपनी क्लॉक आवृति को पदार्थ की आवृति के समान समायोजित करता है, ऐसी स्थिति को अनुनादी स्थिति कहते हैं। इस अनुनादी स्थिति में जीव एवं पुद्गल में उच्चतम शक्ति का आदान-प्रदान होता है। जब दो आवृतियों वाली तरंगें किसी पदार्थ से गुजरती हैं तो पदार्थ में उसका प्रभाव होलोग्राम के रूप में अंकित हो जाता है। ठीक इसी प्रकार अपने राग द्वेष के अनुसार जीव की आत्मा पर पाजिटिव-निगेटिव चार्ज के रूप में होलोग्राम अंकित हो जाता है।[16]

आधुनिक विज्ञान भी अब शरीर के चारों ओर कुछ अत्यंत महीन अदृश्य कणों की उपस्थिति को मानने लगा है।[17]

जिस तरह से रेडियो एक्टिव तत्व लाखों, करोड़ों, अरबों वर्षों तक धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार के विकिरिणों को विकरित करते रहते हैं उसी प्रकार ये कर्म परमाणु भी विशिष्ट किरणें निकालते रहते होंगे। यहाँ ज्ञातव्य है कि जीन में परिवर्तन का मुख्य कारण विभिन्न प्रकार के विकिरण हैं।

कर्म और जीन – प्रत्येक जीव के समस्त गुण गुणसूत्रों के ऊपर जीनों के रूप में होते

हैं। ये गुणसूत्र कोशिकाओं में होते हैं और शरीर कोशिकाओं से ही मिलकर बना है। अर्थात समस्त कोशिकाओं में जीन तो समान ही होते हैं। अत: यह आवश्यक है कि एक निश्चित समय में कुछ ही जीन सक्रिय और शेष निष्क्रिय रहें। यह प्रक्रिया काफी कठिन है।[18] ऐसा विश्वास किया जाता है कि विकसित जीवों में एक विशिष्ट समय में सिर्फ 2 - 15 प्रतिशत तक जीन सक्रिय रहते हैं।[19] विभिन्न जीव किस तरह से, किसके नियंत्रण में कार्य करते हैं इस पर शोध अभी चल रहा है और यहाँ मेरी सोच यह है कि किसी जीव की सक्रियता, निष्क्रियता को प्रभावित करने वाले कारकों में अंतत: विशिष्ट विकिरणें अर्थात कर्म परमाणु ही होंगे।

जीन नियंत्रण और शोध संभावना – विभिन्न जीनों को सक्रिय और निष्क्रिय करने का कार्य हार्मोन्स, विटामिन्स, खनिज, रसायन, रोगजनक कर सकते हैं।[20] ऐसा माना जाता है कि जीन की सक्रियता जीन के वातावरण के साथ हुई क्रिया से प्रभावित होता है अर्थात जीन के चारों ओर स्थित कोशिका द्रव्य के पोषण, प्रकाश तापमान से जीन नियंत्रित होता है।[21]

इस तरह से जीन विभिन्न गुणों का निर्धारण करता है और जीन पर नियंत्रण कुछ जाने / अनजाने कारकों द्वारा होता है। यह शोध का विषय होना चाहिये कि कहीं ये कारक व्यक्ति विशेष के कर्म तो नहीं है?

जीव उत्परिवर्तन और भाग्य बदलना – अनेक बार ऐसा होता है कि किसी जीव के गुण में मूलभूत तथा आंशिक परिवर्तन आ जाता है ऐसा परिवर्तन भी जीन परिवर्तन के कारण होता है जिसे कि उत्परिवर्तन कहते हैं।

उत्परिवर्तन वह है जिसमें जीव की रासायनिक संरचना इस तरह से बदल जाती है जो कि उस जीव के बाह्य लक्षण तक को वंशानुगत रूप में बदल देते हैं।[22]

यह उत्परिवर्तन कृत्रिम रूप से भौतिक कारकों विभिन्न विकिरणों, एक्स - रे, गामा - रे, अल्ट्रा - वायलेट रे के द्वारा हो सकता है। विभिन्न रसायन भी उत्परिवर्तन कर सकते हैं।[23] उत्परिवर्तन में क्षारकों का क्रम परिवर्तन होता है।[24]

यहाँ भी अगर हम प्रस्तुत परिकल्पना की दृष्टि से देखें तो विभिन्न प्रकार के कर्म उत्परिवर्तन उत्पन्न जीव के भाग्य को बदलते / रूपान्तरित करते रहते हैं।

पर्याय परिवर्तन / पुनर्जन्म और जेनेटिक कोड – कोशिका के केन्द्रक में गुणसूत्रों के ऊपर स्थित जीन (जो कि जेनेटिक कोड से मिलकर बने होते हैं) जीव की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं और इन जीनों / जेनेटिक कोडों पर कर्म तरंगें अपना निश्चित नियंत्रण रखकर जीवन नियमन करती है।

यहाँ पर एक रोचक तथ्य है कि समस्त छोटे बड़े जन्तुओं, सूक्ष्मजीवों और पादपों में एक समान जेनेटिक कोड ही होता है।[25] अर्थात अमीबा से लेकर आदमी तक सबमें जीवन संचालक मूलभूत संकेताक्षर समान ही होते हैं अत: पुनर्जन्म की अवधारणा को भी इससे संबल प्राप्त होता है।

संभवत: कार्माण वर्गणायें निश्चित जेनेटिक कोड को नियंत्रित करते हुए अगले जन्म / पर्याय हेतु जेनेटिक कोड को ऐसा निश्चित क्रम प्रदान करती है कि वैसे शरीर की खोज में

आत्मा शरीर से निकल कर गमन करती है तथा जेनेटिक कोड / भाग्य / कर्मफल के अनुसार शरीर / स्थान में पहुँच कर उसका आगे निर्माण करती है या कहें कि एक निश्चित जेनेटिक कोड वाले शरीर में फिट बैठने वाले कार्माण शरीर का निर्माण होता है जो आत्मा के साथ उस नयी पर्याय में पहुँच कर अपना नया जीवन आरम्भ कर देता है। पुनश्च आदमी या किसी भी जीव के जेनेटिक कोड से मिलकर एक गाय / शेर / कीड़े / चिड़िया / पौधे या किसी भी जीव का निर्माण किया जा सकता है।

उपसंहार

इस प्रकार से जीव विज्ञान के अध्ययन के आधार पर लगता है कि समस्त जीवों के सम्पूर्ण जीवन का संचालन, उनकी मूलभूत इकाइयों को कोशिकाओं के अन्दर स्थित जीनों / जेनेटिक कोड के द्वारा होता है।

जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न गतियों, शरीरों का कारण कर्म होता है, जीव के कर्मों के कारण कार्माण शरीर बनता है जो जीव के विभिन्न कार्यों को संचालित करता है।

यह कार्माण शरीर ही संभवतः जीनों की क्रिया को नियंत्रित करता है तथा अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम देता रहता है तथा अगली पर्याय का निर्धारण करता है। इस परिकल्पना को यदि प्रयोगशालाओं में परिवर्धित, परिमार्जित, पल्लवित किया जाये तो यह निष्कर्ष निश्चित रूप से सामने आयेगा कि व्यक्ति की सोच / कार्य के अनुसार ऐसे कारण उसके चारों ओर आकर्षित होते हैं जो कि आगे चलकर तदनुरूप सुखद या दुखद परिणाम देते हैं। टेलीपैथी / रैकी जैसी कुछ प्रणालियों से ऐसे निष्कर्ष निकले भी हैं कि एक व्यक्ति के विचार, शक्ति दूसरी व्यक्ति की विचार / शक्ति तक पहुँचकर उसे प्रभावित करते हैं।

इस दिशा में यदि हम अन्वेषण / अनुसंधान कर सकें तो उपरोक्त जीव वैज्ञानिक परिकल्पना एक निश्चित सिद्धान्त / नियम रूप में सामने आ सकेगी जिससे व्यक्ति सदाचार और कदाचार के प्रत्यक्ष परिणामों को जानकर स्वतः आदर्श आचरण का आलंबन लेने लगेंगे तथा सुखी, संतुष्ट, संतुलित समाज बन सकेगा।

आभार

मैं आचार्य श्री कनकनंदीजी महाराज का आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद, शुभकामनाओं, प्रोत्साहनों से तथा उनके वृहद चिन्तन परक, आधुनिक सरल शैली में लिखे ग्रन्थों की सहायता से प्रस्तुत परिकल्पना की जा सकी।

मैं डॉ. राजमल जैन - उदयपुर, डॉ. अनुपम जैन - इन्दौर एवं डॉ. जे. डी. जैन - दुर्गापुरा (जयपुर) का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी वैज्ञानिक दृष्टि, शुभकामनाओं ने मुझे संबल दिया।

References (Literature)

1. Gupta P.K., Psychology, Genetics and Plant Breeding, Rastogi Publication, Shivaji Road, Meerut - 2, 1989, p. 1 - 163, 1 - 219.
2. कनकनन्दि आचार्य, स्वतंत्रता के सूत्र (तत्वार्थ सूत्र टीका सहित), धर्म दर्शन शोध प्रकाशन, बड़ौत, 1992

3. Biology (XII) Part I, 1995, N.C.E.R.T., New Delhi,P. 1-762.
4. Biology (XII) Part II, 1995, N.C.E.R.T., New Delhi,P. 763-1081
5. अग्रवाल, पारसमल, कर्म सिद्धान्त एवं भौतिक विज्ञान का क्वाण्टम सिद्धान्त, अर्हत् वचन, इन्दौर, **8** (1), जनवरी 96, पृ. 9 - 15
6. Krivov Sergui, Eco-Rationality and Jaina Karma Theory, Arhat Vacana, **9** (3), July 97, p. 53-68
7. Gangwal Manik Chand, 'Karmic Theory in Jain Philosophy', Arhat Vacana, Indore, **10** (2), April 98
8. जैन, जिनेश्वरदास, कर्मबन्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण, अर्हत् वचन (इन्दौर), **10** (3), जुलाई 98

संदर्भ स्थल :

1. Biology XII (I) p. 533
2. वही, p. 176
3. स्वतंत्रता के सूत्र, पृ. 353
4. वही, पृ. 355
5. वही, पृ. 476
6. वही, पृ. 572
7. वही, पृ. 471
8. वही, पृ. 165
9. वही, पृ. 299
10. वही, पृ. 298
11. वही, पृ. 302 - 303
12. वही, पृ. 308
13. वही, पृ. 332
14. वही, पृ. 506 - 509
15. वही, पृ. 510
16. जैन, जिनेश्वर दास, अर्हत् वचन, पृ. 57 - 58
17. गंगवाल, माणिकचन्द, अर्हत् वचन, पृ. 61
18. गुप्ता, पी. के. मालीक्यूलर बायोलॉजी, पृ. 50
19. वही, पृ. 50
20. Biology XII (I) p. 857
21. वही, p. 860
22. गुप्त पी. के., जेनेटिक्स, पृ. 159
23. वही, पृ. 162
24. वही, पृ. 172
25. वही, पृ. 69

प्राप्त - 1.12.98

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 23 - 32

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कालद्रव्य : जैन दर्शन और विज्ञान

■ कुमार अनेकान्त जैन *

मानव के मन में यह प्रश्न सदा से उठता आया है कि जहाँ वह रहता है, जो वह देखता है, जो वह सुनता है, वह कैसे बना? कहाँ बना? कब बना? क्यों बना? तथा किसने बनाया? इन्हीं जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए मानव ने अनेकों यत्न किए और अपनी बुद्धि का विकास किया। इन्हीं यत्नों का फल है दर्शन और विज्ञान की उत्पत्ति। विश्व में कितने द्रव्य हैं? किन - किन तत्वों से सृष्टि की रचना हुई है? इत्यादि प्रश्नों के समाधान प्राय: सभी दार्शनिकों वैज्ञानिकों ने अपने - अपने ज्ञान और सामर्थ्यानुसार दिये हैं।

विश्व में जो कुछ भी घटना चक्र चल रहा है उसमें काल निमित्त माना जाता है। काल का अविरल गति से चलता चक्र सदैव ही मानव के लिए रहस्य और जिज्ञासा का विषय रहा है। अत: सृष्टि के आरंभ से ही काल की मानवीय जिज्ञासा और चिंतन में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

काल का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन अपने आप में अनोखा है। सृष्टि के सभी घटनाचक्र इसी के इशारे पर नाचते हैं। इसके एक इंगित से जीवन मृत्यु में बदल जाता है और मृत्यु नव जन्म का सरंजाम जुटाने लगती है। काल के विषय में दार्शनिक दृष्टि भी महत्वपूर्ण है और वैज्ञानिक दृष्टि भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि विज्ञान और दर्शन का लक्ष्य एक है तथापि उनमें काफी अन्तर है और यह अन्तर साधनों का है। जहाँ एक तरफ विज्ञान भौतिक साधनों एवं बौद्धिक शक्ति पर आधारित है वहीं दूसरी तरफ दर्शन अन्तर्ज्ञान की शक्ति पर आधारित है जिसे "Intutional Power" कहा जाता है। दर्शन की कसौटी तर्क है और विज्ञान की कसौटी प्रयोग। इस दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि विज्ञान और दर्शन में अन्तर होते हुए भी उनके लक्ष्य 'सत्य' की दृष्टि से समानता है।

भारतीय दर्शनों में काल की पर्याप्त चर्चा है, जैन दर्शन में भी 'कालद्रव्य' की काफी विवेचना की गयी है।

जैन दर्शन में काल का स्वरूप

जैन दर्शन के अनुसार यह विश्व छह द्रव्यों से मिलकर बना है - 1. जीव, 2. पुद्गल, 3. धर्म, 4. अधर्म, 5. आकाश, 6. काल।

इन छह द्रव्यों में 'कालद्रव्य' को छोड़कर शेष सभी द्रव्यों के स्वरूप के विषय में प्राय: सभी जैनाचार्य एकमत हैं। 'कालद्रव्य' के विषय में मतभेद हैं और विभिन्न जैनाचार्य उसकी अलग - अलग व्याख्या करते हैं। 'काल' शब्द के विभिन्न अर्थ होते है किन्तु जैनदर्शन की द्रव्यमीमांसा के अनुसार यह अनस्तिकाय एक प्रदेशी द्रव्य है जिसकी सूक्ष्मतम पर्याय 'समय' कहलाती है। अथवा अन्य शब्दों में 'समय' काल का अविभाज्य अंश है। सामान्य व्यवहार में जब समय कहा जाता है तब उसका अर्थ काल ही माना जाता हैं।

* शोध छात्र, जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ - 341 306

(अ) काल अस्तिकाय नहीं है

काल एक प्रदेशी होने से अस्तिकाय नहीं है, इसलिए काल द्रव्य रूप में तो स्वीकार्य है किन्तु वह शेष द्रव्यों से भिन्न अनस्तिकाय माना जाता है। द्रव्यसंग्रह में अस्तिकाय का लक्षण करते हुए लिखा है

'संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवराजम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य:॥[1] 24॥

भावार्थ यह है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पांच द्रव्य अस्तिकाय हैं क्योंकि ये काय के समान बहुप्रदेशी हैं।

अत: काल को एक प्रदेशी होने से अनस्तिकाय द्रव्य कहा। दिगम्बर और श्वेताम्बर परंपरा इस विषय में तो एक मत है ही कि 'काल' अस्तिकाय नहीं है।

(ब) काल संबंधी मतभेद

काल की वास्तविकता के विषय में दिगम्बर परंपरा और श्वेताम्बर परंपरा में परस्पर मतभेद है। दिगम्बर परंपरा के तत्वार्थसूत्र के पांचवे अध्याय में सूत्र संख्या 39 में लिखा है **'कालश्च'**[2] जिसका अर्थ होता है 'काल भी द्रव्य है' जबकि श्वे. परंपरा में इसी स्थान पर **'कालश्चेत्येके'**[3] पाठ मिलता है अत: वे काल को एक मत से द्रव्य स्वीकार नहीं करते। इसके स्थान पर वहां 'औपचारिक द्रव्य' की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है।

श्वेतांबर परंपरा में काल का स्वरूप

यहां आचार्यों ने काल के दो भेद किए हैं - 1 व्यवहारिक काल, 2. नैश्चयिक काल।

(1) व्यवहारिक काल

व्यवहारिक काल गणनात्मक है।[4] काल के सूक्ष्मतम अंश समय से लेकर पुद्गल परावर्तन तक के अनेकमान व्यवहारिक काल के ही भेद हैं। इनमें घड़ी, मुहुर्त, अहोरात्र, मास, वर्ष अथवा सैकिण्ड, मिनिट, घण्टा आदि के भेद भी समाविष्ट है। सूर्य चन्द्र की गति के आधार पर इनका माप किया जा सकता है। किन्तु विश्व के प्रत्येक स्थान पर सूर्यचन्द्र की गति नहीं होती, एक मर्यादित क्षेत्र को छोड़कर शेष स्थानों में जहां ये आकाशीय पिण्ड अवस्थित हैं, वहां दिन, रात्रि आदि कालमान नहीं होते। इसलिये यह माना गया है कि व्यवहारिक काल केवल 'समय क्षेत्र' तक सीमित है।'

(2) नैश्चयिक काल

नैश्चयिक काल अन्य द्रव्यों में परिवर्तना का हेतु है। भगवती सूत्र में गौतम भगवान महावीर से प्रश्न पूछते हैं -

'किमयंभन्ते। कालोति पव्वुचइ?
गोयमा जीवा चेव अजीवा चेव।'
हे भगवान! काल किसको कहते हैं।
हे गौतम! जीव को भी और अजीव को भी।[5]

भावार्थ यह है कि जीव, पुद्गल आदि द्रव्यों में प्रतिसमय जो परिणमन होता - पर्याय बदलती रहती है, वह नैश्चयिक काल के निमित्त से है। दूसरे शब्दों में काल को जीव और अजीव की पर्याय माना गया है। जो जिस द्रव्य की पर्याय है वह उस द्रव्य

के अन्तर्गत ही है, अतः जीव की पर्याय जीव है और अजीव की पर्याय अजीव है। इस प्रकार नैश्चयिक काल जीव भी है और अजीव भी है। अतः इस परंपरा में नैश्चयिक काल को नित्य कालाणु के रूप में ध्रौव्य स्वरूप द्रव्य स्वीकार नहीं किया गया है।

दिगम्बर परंपरा में काल

दिगम्बर परंपरा में भी काल के निश्चयकाल और व्यवहार काल ऐसे दो भेद किये गये हैं। *सर्वार्थसिद्धि* में लिखा है -

'कालो हि द्विविध: परमार्थकालो व्यवहारकालश्च'[6]

अर्थात् काल दो प्रकार का है व्यवहार काल और परमार्थ काल।

व्यवहार काल

द्रव्य संग्रह में आया है -

'द्रव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो'[7]

अर्थात् जो द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक, परिणामादि लक्षण वाला है, वह व्यवहार काल है।

इसी की टीका में स्पष्ट किया गया है -

पर्यायस्य सम्बन्धिनी याऽसो समयघटिकादिरूपास्थिति: सा व्यवहारकाल संज्ञा भवति, न च पर्याय इत्यभिप्राय:।[8]

अर्थात् - द्रव्य की पर्याय से संबंध रखनेवाली यह समय घड़ी आदि रूप जो स्थिति है वह स्थिति ही व्यवहार काल है वह पर्याय व्यवहार काल नहीं है।

काल द्रव्य की समय, पल, घड़ी, दिवस, वर्ष आदि पर्यायों को व्यवहार काल कहा जाता है। पंचास्तिकाय ग्रंथ में लिखा है[9] - समय, निमेष, काष्ठा, कला, घड़ी, अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और वर्ष - ऐसा जो काल (व्यवहार काल) वह पराश्रित है।' अब यहां प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि व्यवहार काल को पराश्रित क्यों कहते हैं? पंचास्तिकाय में उसे भी समझाया गया है कि पर की अपेक्षा बिना, अर्थात, परमाणु, आंख, सूर्य आदि पर पदार्थों की अपेक्षा बिना व्यवहार काल का माप निश्चित करना अवश्यंभावी होने से उसे पराश्रित कहा गया है।

यद्यपि वर्तमान व्यवहार में सेकेण्ड से वर्ष, मास, पक्ष, दिन घंटा, मिनट, सेकेण्ड तक ही काल का व्यवहार प्रचलित है परन्तु आगम में उसकी जघन्य सीमा 'समय' है। 'समय' काल की सूक्ष्म पर्याय है। जघन्य गति से एक परमाणु सटे हुए द्वितीय परमाणु तक जितने काल में जाता है उसे 'समय' कहते हैं।

नैश्चयिक काल

'पंचानांवर्तना हेतुः काल:'[10] अर्थात् पांचों द्रव्यों को वर्तना का निमित्त वह काल है। यह काल ही नैश्चयिककाल कहलाता है इसका मुख्य उपकार है 'वर्तना'।

वास्तव में तो अपनी-अपनी अवस्था रूप स्वयं परिणमित होने वाले जीवादि द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो उसे कालद्रव्य कहते हैं, जैसे कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

सर्वद्रव्य अपने-अपने उपादान कारण से अपनी-अपनी पर्याय के उत्पाद रूप वर्तते

हैं, अर्थात परिणमन करते हैं, उसमें बाह्य निमित्त कारण काल द्रव्य है। इसलिए वर्तना काल का लक्षण या उपकार कहा जाता है।

द्रव्य संग्रह में लिखा है 'वट्ठलक्खो य परमट्ठो' अर्थात् वर्तना लक्षण युक्त निश्चयकाल है। द्रव्य संग्रह में ही लिखा है कि -जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में रत्नों की राशि के समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं, वे कालाणु है और असंख्यात द्रव्य हैं।[11]

पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति टीका[12] में एक शंका समाधान किया गया है जो 'कालाणु' को द्रव्य रूप सिद्ध करता है।

प्र. - समयरूप ही निश्चय काल है, उस समय से भिन्न क्या अन्य कोई कालाणु द्रव्यरूप निश्चय काल नहीं है?

समा. - समय तो कालद्रव्य की सूक्ष्म पर्याय है स्वयं द्रव्य नहीं है।

प्र. - समय को पर्यायपना किस प्रकार प्राप्त है?

समा. - पर्याय उत्पत्ति विनाशवाली होती है 'समय उत्पन्न प्रध्वंसी है,' इस वचन से समय को पर्यायपना प्राप्त होता है, और वह पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती, तथा द्रव्य निश्चय से अविनश्वर होता है। इसलिए काल रूप पर्याय का उपादान कारणभूत कालाणु रूप काल द्रव्य ही होना चाहिए न कि पुद्गलादि क्योंकि उपादान कारण के सदृश्य ही कार्य होता है।

काल और विज्ञान

कहावत है कि समय तीर की तरह भागता है और गुजरा हुआ समय वापस नहीं आता। वैज्ञानिकों ने इस लोक प्रचलित कहावत को ध्यान में रखते हुए अनेकों रहस्यों को उजागर किया। सन् 1927 में ब्रिटिश अन्तरिक्षवेत्ता सर आर्थर एडिंगटन ने सापेक्षतावाद के तहत Arrow of Time अर्थात् समय के तीर का अन्वेषण किया। क्वांटम सिद्धांत के जन्मदाता वारनर हाइसनबर्ग, विख्यात वैज्ञानिक श्रोडिंगर तथा आइन्सटीन ने समय के बारे में एक नयी बात बतायी। उनके अनुसार काल गति को वर्तमान से भविष्य की ओर के दायरे में नहीं बांध सकते। ऐसा भी हो सकता है कि समय वर्तमान से भूत की ओर चलने लगे। उनके इस प्रतिपादन से विज्ञान जगत में हलचल मच गयी, परन्तु उनके तर्क तथ्य एवं प्रमाण सम्मत विवेचन को सभी को स्वीकारना पड़ा।

आइन्स्टीन के आपेक्षिकता के सिद्धांत (The Theory of Relativity)[13] ने भौतिक विज्ञान में अनेक वृहद् परिवर्तन ला दिये। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन आकाश और काल की धारणा संबंधी थे। सुप्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक मिन्काउस्की ने आपेक्षिकता के सिद्धान्त का गणितीय प्रतिपादन जिस रूप में किया, उससे यह तथ्य निकला कि विश्व 'आकाश काल की एक सम्मिलित चतुर्विमीय सततता' (Four Dimensional Continum of Space and Time) के रूप में है। अधिकांश रूप में गणित के साथ संबंधित होने से इस तथ्य को यद्यपि व्यवहारिक भाषा में समझना अत्यंत कठिन है, फिर भी उदाहरणों के द्वारा इसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार आकाश की तीन विमायें (Dimensions) और काल की एक विमा मिलकर एक चतुर्विमीय अखण्डता का निर्माण करती है और हमारे वास्तविक जगत में होने वाली सभी घटनायें इस चतुर्विमीय सततता की विविध अवस्थाओं

के रूप में सामने आती है।

आकाश और काल (Space and Time) की अभिन्नता के संदर्भ में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हाइसनबर्ग लिखते है[14] 'जब हम भूत शब्द का प्रयोग करते है, तब उसका तात्पर्य यही होता है कि उसमें घटित सभी घटनाओं का ज्ञान करने के लिए हम समर्थ हैं, वे घटनायें घट चुकी हैं। इसी प्रकार से जब हम भविष्य का प्रयोग करते हैं, तो अर्थ होता है कि वे सभी घटनायें जो अब तक घटित नहीं हुयी हैं, 'भविष्य' की है, जिनको हम प्रभावित करने में असमर्थ है...........इन परिभाषाओं का हमारे दैन्दिन के शब्द व्यवहार से सीधा संबंध है। अत: इस अर्थ में यदि हम इन शब्दों (भूत और भविष्य) का उपयोग करते हैं, तो बहुत सारे प्रयोगों के परिणामस्वरूप यह बताया जा सकता है कि 'भविष्य' और 'भूत' की घटनायें दृष्टा की गतिमान अवस्था अथवा अन्य गुणधर्मों से बिल्कुल ही निरपेक्ष है।'

आइन्स्टीन का मानना है[15] - 'जिस प्रकार रंग, आकार, परिमाण हमारी चेतना से उत्पन्न विचार हैं उसी प्रकार आकाश और काल भी हमारी आन्तरिक कल्पना के ही रूप है। जिन वस्तुओं को हम आकाश में देखते हैं, उनके 'क्रम' के अतिरिक्त आकाश की कोई वस्तु सापेक्ष वास्तविकता नहीं हैं। इसी प्रकार जिन घटनाओं के द्वारा हम समय को मापते हैं, उन घटनाओं के क्रम के अतिरिक्त काल का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है', [16] 'आकाश का और काल का स्वतंत्र वस्तु सापेक्ष अस्तित्व न होने पर भी 'आकाश और काल की संयुक्त चतुर्विमीय सततता' वस्तु सापेक्ष वास्तविकता का प्रतीक है।'

आइन्स्टीन के इसी सिद्धान्त को मानते हुये वैज्ञानिक हंस राइशनबाख ने अधिक स्पष्ट करते हुए यह निरूपण किया है कि आकाश और काल का वस्तु सापेक्ष स्वतंत्र अस्तित्व है। वे लिखते हैं[17] - हम निम्न कथन को आकाश और काल संबंधी सबसे अधिक सामान्य विधान के रूप में लिख सकते हैं - 'सर्वत्र और सदा आकाश काल की निर्देश निकाय का अस्तित्व है' - यह निष्कर्ष आकाश और काल के बीच की भेदरेखा को अच्छी तरह प्रमाणित करता है।'

राइशनबाख आकाश के गुण धर्म वस्तु सापेक्ष मानते है, उनके समग्र चिंतन का सार यही है कि वे आपेक्षिकता के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, फिर भी 'आकाश' और 'काल' की वस्तु सापेक्ष, वास्तविकता के निरूपण को इस सिद्धान्त का फलित प्रतिपादन मानते हैं।

आकाश और काल को प्रो. हेनी मार्गेनो भी वास्तविक मानते हैं। वे मानते है[18] - कोई भी पदार्थ सापेक्ष होने से अवास्तविक नहीं बन जाता। निरपेक्ष आकाश की मान्यता को यद्यपि आपेक्षिकता का सिद्धान्त स्वीकार नहीं करता, फिर भी उससे 'आकाश' की वास्तविकता का अस्वीकार नहीं होता।'

विज्ञान मनीषी स्टीफेन हाकिंग ने अपनी विश्वविख्यात रचना The Brief History of Time)" में समय की सापेक्षिकता पर काफी मूल्यवान विचार व्यक्त किये हैं।[19] उन्होंने समय को एकीकृत गुरुत्वबल से जोड़कर 'काल्पनिक समय' की एक नयी परिकल्पना दी है। इसके अनुसार इस स्थिति में दिशाओं का अस्तित्व विलीन हो जाता है, जबकि वास्तविक समय में दिशा महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्रम में 'काल' के तीन रूप प्रकाश में आए -

1. Thermodynamic Arrow of Time

2. Psychological Arrow of Time
3. Cosmological Arrow of Time

इसमें Thermodynamic तथा Cosmologicalसमय की दिशा भूत से भविष्य की ओर जाती है, जबकि Psychological समय भविष्य से भूत की ओर गमन करता है। इसी के आधार पर ही हम अपने मन में स्वयं के अतीत को चलचित्र की भांति देखते हैं।'

काल यात्रा के वैज्ञानिक अरमान

काल यात्रा की यान्त्रिक परिकल्पना पहली बार 1987-88 में चार्ल्स पेलीग्रीनो एवं जेम्स पावेल ने की। उन्होंने इसे अन्तरतारकीय उड़ान से संभव बतलाया। उन्होंने बतलाया यह एण्टीमैटर रॉकेट से संभव है। इसके पश्चात नासा के राबर्ट जैस्ट्रो, जील टार्टर, रावर्ट फारवर्ड और जानरेदर ने इस ओर गहन अनुसंधान किये। सन् 1987 में पाल सीमन्स ने यह परिकल्पना करते हुए कहा कि आगामी शताब्दी अल्फा शताब्दी के नाम से जानी जायेगी। इस दौरान काल यात्रा का यह पुरुषार्थी अभियान साकार हो सकेगा।

वैज्ञानिकों ने इस काल यात्रा पर जाने के लिए विलक्षण - अन्तरतारकीययान की परिकल्पना की है। उनके अनुसार यह यान तारक पथ पर द्रव्य एवं प्रतिद्रव्य की अभूतपूर्व ऊर्जा से संचालित होगा। चुम्बकीय पट्टी पर एण्टीप्रोटान धनात्मक की बजाय ऋणात्मक चार्ज होता है। जब यह एण्टी प्रोटान सामान्यावस्था में आता है तो पूरा द्रव्य ऊर्जा में बदल जाता है। इस तरह सीमन्स की मान्यता है कि द्रव्य को ऊर्जा में रूपान्तरित करके हाइड्रोजन बम से सैकड़ों गुनी ज्यादा ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, फिर काल यात्री तो समय की ऊर्जा का भी प्रयोग करेंगे, जिसके द्वारा वे एक आकाश गंगा से दूसरी आकाश गंगा तक इस तरह घूमेंगे फिरेंगे जैसे हम लोग न्यूयार्क से दिल्ली आते जाते हैं।

'Beyond The Time Barrier' में A Times का प्रकाशित तथ्य बतलाता है कि वह समय दूर नहीं, जब समय के धरातल पर आगे या पीछे यात्रा करना वास्तविक एवं यथार्थ विषय होगा। 'टाइम मशीन' Time Machine" में एच.जी. वेल्स की अवधारणा भी इसी तरह प्रतिपादित है। जान व्हीलर ने ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसे 'वार्म होल' के बारे में प्रकाश डाला है, जिसमें से होकर समय की यात्रा अतीव सरल हो जायेगी। ब्लैक होल में भी समय का सारा मापदण्ड निष्क्रिय तथा समाप्त हो जाता है। उड़नतश्तरियों का वास्तविक तथा रोमांचक अन्तर्ग्रहीय यात्रा पथ शायद यही Black Hole, White Hole or Warm Hole होंगे।

वैज्ञानिकों को तो काल यात्रा के यांत्रिक साधन जोड़ने में बहुत वक्त लग सकता है। सारे साधन जुट जाने पर भी यह कल्पना मूर्त होगी अथवा नहीं? और यदि हो तो काफी खर्चीली होगी। पता नहीं सभी इसका उपयोग कर पायें या नहीं, किन्तु काल का यह जादू जैसा दिखने वाला रहस्यबोध न केवल हमारे सामने एक जादुई संसार खोलेगा अपितु हर उस जिज्ञासा / समस्या का समाधान करेगा जो आज भी हमारे मस्तिष्क में हलचल मचाये हुए हैं।

काल और मनोविज्ञान

Psychological Arrow of Time की खोज ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत बड़ी भूमिका अदा की है। "Beyond The Time Barrier" में विलियम ब्लैक ने इसका कुछ अधिक खुलासा किया है। वे बतलाते है कि इसके रहस्य को जानकर हम सब अपने

निर्माण के इतिहास को भेदकर परिभ्रमण कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि विगत समय का अवश्य ही कोई ऐसा अदृश्य सूत्र हमारे पास है, जिसे ढंग से समझ लेने पर हम रहस्यमय सृष्टि के अनेकों अज्ञात लोकों को जान सकते हैं। वर्तमान मनोवैज्ञानिकों के प्रयास भी इन दिनों कुछ इसी ओर हैं। पाश्चात्य जगत में 'अवचेतन' के नाम पर तहलका मचाने वाले सी.जी. युंग "Memories Dreams and Reflections" में लिखते है कि मनोविज्ञान अवश्य ही उन्नत विज्ञान है जिससे काल के रहस्य को जाना जा सकता है। इस क्रम में किए गये अनुसंधान मानव को उसके भूत और भविष्य की झांकी दिखा सकते हैं तब त्रिकालदर्शी होना उसके लिए कोई अनूठी बात न होगी।

मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में पाया है कि सम्मोहित अवस्था में व्यक्ति अपने बीते हुए जीवन की समस्त घटनाओं का साक्षात्कार कर सकता है। इस संबंध में जे. ग्रीवन का "Time Birth" ग्रन्थ उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि सम्मोहन की स्थिति में व्यक्ति की चेतना पार्थिव शरीर को लांघ कर काल के किसी उच्चतर आयाम में प्रवेश कर जाती है। जहां भूत एवं भविष्यत घटनाओं से संबंधित सभी तथ्यों तथा प्रत्येक जानकारियों से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। किस तरह वर्तमान के बंधन को शिथिल कर उन्नत आयामों से संपर्क किया जा सकता है? इसके जवाब में डब्लू.एच.डन ने अपने ग्रन्थ "Experiment with Time" में कहा है कि जब हम सामान्य चेतनावस्था को शिथिल कर गहरी सुषुप्ति की स्थिति में पहुँचते हैं तो भूत और भविष्य उसी तरह अनुभव की परिधि में आ सकते हैं जिस तरह आमतौर पर वर्तमान अनुभव में आता है।

निष्कर्ष

धर्म हो या दर्शन, चाहे भौतिक विज्ञान हो या मनोविज्ञान सभी अपने - अपने नजरिये से काल चिंतन करते हैं और उसकी प्रस्तुति करते हैं। भारतीय दर्शन में लगभग प्रत्येक दर्शन काल का चिंतन करता है, कुछ उसे नित्य तत्व मानते हैं कुछ उसे मात्र घंटा, पल, दिन - रात की गणनाओं में सीमित कर देते हैं। न्यायवैशेषिक का 'कालचिंतन' जैनदर्शन के 'कालद्रव्य' के बहुत क़रीब है किन्तु जैनदर्शन में ही दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दोनों ही परंपरायें काल पर अलग - अलग चिंतन देती है।

विज्ञान का काल संबंधी चिंतन जैन दर्शन के काल संबंधी चिंतन के धीरे - धीरे करीब पहुँचता जा रहा है। विज्ञान में कई वैज्ञानिकों ने काल के संदर्भ में विभिन्न प्रयोग एवं विभिन्न कल्पनायें की हैं किन्तु वे संतुष्ट दिखायी नहीं देती। उदाहरण के तौर पर हम सूक्ष्मतम काल को ही लें, कुछ समय तक वैज्ञानिक 'सेकेण्ड' तक ही काल की सूक्ष्मता मानते थे, किन्तु जैनदर्शन में 'समय' काल द्रव्य की सूक्ष्मतम पर्याय है। कहा जाता है कि जब हम एक पलक झपकाते हैं तो उसमें अनन्त समय बीत जाते हैं। इसी अवधारणा के पीछे वैज्ञानिक विकास हुआ। डॉ. आर. एन. शर्मा की दी हुयी जानकारी के अनुसार सेकेण्ड की पहली अधिकारिक परिभाषा सन् 1875 में पेरिस के निकट सेवरेस में दी गयी, उसके बाद 1956 में इसे संशोधित किया गया, किन्तु यह भी उचित नहीं बैठी तब 1967 में सेकेण्ड की सबसे परिशुद्ध परिभाषा दी गयी जो कि आज तक सही मानी जाती है। इसमें कहा गया है कि 'सीसियम 12 परमाणु की आधारभूत अवस्था में उसके हाइफाइन स्तरों में होने वाले 9,19,26,31,700 विकिरणों की अवधि एक सेकेण्ड के बराबर होती है। वैज्ञानिक सेकेण्ड के भी अन्दर गये और इतना हो जाने पर भी नयी खोज

में सुप्रसिद्ध पुस्तक Unesco Time and the Science की भूमिका में सर जार्ज पोस्टर F.R.S. लिखते हैं कि[20] पिछले दशक से इस रॉयल संस्थान में शोध करने का मुख्य विषय तेजी से होने वाले रासायनिक परिवर्तन और क्षणिक अस्तित्व के पदार्थों का अध्ययन करना है और उस दौरान समय का अन्तराल जिसके ऊपर चिंतन किया जाता है उसे Microsecond से Piscosecond (10^{-12} S) के Million अंश तक संक्षिप्त कर दिया गया है। जहाँ तक Chemistry का संबंध है वहां समय का अंश Femtosecond तक और समय की अनिश्चित सीमा तक ले जायेगा। जहां तक Chemistry का अस्तित्व है उससे भी आगे समय का इन सभी की अपेक्षा और छोटा अस्तित्व है।'

अत: हम देखते है कि विज्ञान और अधिक सूक्ष्मतम काल 'समय' (जैन दर्शन का समय) की संभावना अभी भी रखते हैं।

वैज्ञानिक तो काल यात्रा का ख्वाब भी देखते हैं किन्तु क्या कभी उसकी यात्रा की जा सकती है जिसकी नित्य सत्ता न हो। कालाणु की नित्य सत्ता है। बिना इसको स्वीकारे वैज्ञानिक कालयात्रा तो क्या, काल यात्रा का ख्वाब भी नहीं देख सकते हैं।

मनोविज्ञान भी काल के संदर्भ में ऐसे महत्वपूर्ण सुराख निकालेगा - ऐसा विश्वास नहीं किया जाता था। हम चाहें तो मनोविज्ञान को और भी ज्यादा विकसित कर सकते हैं। विज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है इसलिए वे इसे ज्यादा प्रामाणिक नहीं मानते। विज्ञान हो या मनोविज्ञान इनके पास मात्र दो चीजें है एक मन और दूसरा बुद्धि। ये मन और बुद्धि के माध्यम से जो उन्नति करने की कल्पना करते है, वह जैन दर्शन के अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष तक चला जाता है। जैसे जो बात जे. ग्रीवन अपनी पुस्तक 'टाइमबर्थ' में भूत और भविष्य को प्रत्यक्ष जानने की करते हैं वह अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय है। जिसका कि विज्ञान के पास अभाव है किन्तु उनकी कल्पना काबिले तारीफ है जो अनुमान से 'केवलज्ञान' को सिद्ध करती है। इसके अनुसार अवचेतन की अवस्था में भूत भविष्य को जाना जा सकता है, किन्तु मुझे विश्वास है मनोवैज्ञानिक भविष्य में यह अवश्य सिद्ध कर पायेगे कि 'अवचेतन' मूलत: जड़ता या बेहोशी न होकर अतीन्द्रिय ज्ञान की दशा है और वस्तुत: उसी वीतराग शुद्धोपयोगी अवस्था में भूत और भविष्य प्रत्यक्ष होता है जो वैराग्य, संयम, ध्यान, योग और वीतरागता से प्राप्त होता है।

मनोवैज्ञानिक तो इस काल के जादुई रहस्य को खोलने का अनेक प्रयास करते रहे हैं और करते रहेंगे किन्तु मेरा मानना है कि इस दिशा में हम स्वयं ही प्रयास कर सकते हैं। हम सभी में से अधिकांश व्यक्ति कभी-कभी किसी घटना को देखकर कुछ पल के लिए यह अनुभव करने लगते हैं कि ऐसा मेरे साथ पहले कभी हो चुका है, प्राय: ऐसी घटनायें नये स्थानों पर भी होती हैं जहां हम पहले कभी नहीं गये। बिल्कुल ऐसा ही वार्तालाप, ऐसी ही क्रिया, या घटना मेरे सामने कभी घट चुकी है - ऐसा अनुभव होता है। फिर तुरन्त ही दूसरे क्षण हम यह विस्तार करने लगते हैं ऐसा क्यों हुआ? हमारे मन में ऐसा प्रश्न अवश्य उठता है किन्तु हम उसे दृष्टिभ्रम या स्वयं को चक्कर में आने का प्रसंग जोड़कर उस जिज्ञासा का वहीं उपशम कर देते हैं। यह भी खोज का विषय हो सकता है कि क्या काल का कोई सूक्ष्म अमूर्तिक नित्य अस्तित्व संपूर्ण लोक में है और जो अनायास कभी-कभी हमारे अनुभव का विषय बन जाता है? संभवत: कालाणु?

विभिन्न वैज्ञानिक काल संबंधी विभिन्न मत प्रस्तुत करते हैं किन्तु वे अभी भी

वास्तविक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे है सर जार्ज पोस्टर F.R.S. (Unesco) तो इस बात को खुलकर लिखते हैं[21]

Scientific method has made three major contributions to our concept of time -

1. First, it has given a definition to the direction of time through the second Law of thermodynamics and its statistical mechanical interpretation.

2. Second, it has revealed the inseparable connection between time & space and the relativity of time measurments from one observer to another, and -

3. Thirdly, it has shown the limits of certainty in measurements of quantities made in finite intervals of time.

We can hardly claim that, as a result of these discoveries, we understand better the meaning of time, on the contrary, they have merely emphaisized how very for we are from any such understanding.

इस प्रकार हम देखते है कि काल के विषय में विज्ञान तमाम खोज करने के बाद भी अपने को अपूर्ण मानता है। वास्तव में प्रत्यक्षतः विज्ञान केवल भौतिक चीजों की सच्चाईयों को जानने का उपक्रम है। पर संधान-अनुसंधान की प्रक्रिया के माध्यम से वह सम्यक् ज्ञान का किंचित साधन अवश्य बन जाता है और इस प्रकार वह अध्यात्म की राह भी प्रशस्त करता है। धर्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य सत्य की शोध है। धर्म का विषय आत्मा के सत्य को जानना है, विज्ञान का लक्ष्य पदार्थ जगत के सत्य को जानना है। धर्म का सत्य और विज्ञान का सत्य मिलकर जिस सत्य को उद्घाटित करते हैं और उस तक पहुँचने में स्वयं को प्रवृत्त करना ही आध्यात्म की यात्रा है। विज्ञान के अन्वेषण और उन पर आधारित उपकरण निर्जरा के निमित्त है या नहीं - यह विवाद का विषय हो सकता है पर उसमें से अधिकांश आस्रव की गति को धीमी करते हैं और इस तरह संवर की साधना में सहायक बनते हैं।

प्राचीन समय में धर्म दर्शन का उद्भव श्रद्धाजनित नहीं था। प्रारंभ में धर्म के पीछे भी विज्ञान की ही तरह बुद्धि, विवेक, विचार, तर्क, हेतु प्रयोजन युक्ति, कारण और न्याय ही रहे हैं। इनके आधार पर धर्म दर्शन की जो परिभाषा बनी, कालान्तर में उसकी गलत व्याख्यायें हुयीं। फलस्वरूप धर्म में विसंगतियों और विकृतियों का समावेश हुआ। सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान के अभाव ने उन विकृतियों को धर्म का परिधान पहना दिया। कुछ का आग्रह रहा और कुछ का अज्ञान-जब दोनों मिले तो विवेक और बुद्धि की जगह अंध श्रद्धा ने ले ली। समय बीतता गया। श्रद्धा के आसन पर अंधश्रद्धा कब आरूढ हो गयी पता नहीं चला दृष्टि आसन पर टिकी रही और हम भटक गये।

हम आत्मकल्याण की दिशा में केवल धर्म की ही नहीं बल्कि विज्ञान की बात साथ लेकर चले थे। धर्म की तरह विज्ञान भी सम्यग्दर्शन की साधना है, सम्यक्ज्ञान की आराधना है। दौलतरामजी छहढ़ाला में इसे ही 'वीतराग विज्ञान' कहते हैं।

विज्ञान, विवेक और युक्ति को कभी छोड़ता नहीं और इसलिए अपने पथ से कभी

भटकता नहीं, फलत: उसमें विसंगतियों और विकृतियों का प्रवेश नहीं होता किन्तु यह बात भी निश्चित है कि वैज्ञानिक विज्ञान को जानते हुए भी कभी भी गृहीत और अगृहीत मिथ्यात्व से दूर नहीं हो पाते हैं क्योंकि मिथ्यात्व का नाश धर्म के माध्यम से ही होता है।

अत: आधुनिक विज्ञान में से उपादेय भूत वस्तुतत्व को जानकर धर्म दर्शन के विज्ञान को समझना नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ स्थल -

1. द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव, गाथा - 24
2. तत्वार्थ सुत्र, आचार्य उमास्वामी, 5 / 39
3. वही
4. विश्वप्रहेलिका - मुनि महेन्द्र कुमार, पेज 83
5. भगवती सूत्र (जैन श्वेताम्बर परम्परा मान्य चतुर्थ जैन आगम)
6. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपाद, 5 / 22
7. द्रव्यसंग्रह, गाथा - 21
8. वही टीका
9. पंचास्तिकाय, आचार्य कुन्दकुन्द - गाथा 25
   समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवास्ती।
   मासोदुअवण संवच्छरोत्ति कालो परायत्तो॥
10. नियमसार - गाथा - 9 की टीका।
11. द्रव्यसंग्रह - गाथा - 22
    'लोयायासपदेसे इक्किक्के जेठिया हु इक्किक्का।
    रयणाणं रासीइव ते कालाणु असंखदव्वापि॥
12. पंचास्तिकाय ता.वृ. 26 / 55 / 8 (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, पृ. 84)
13. विश्व प्रहेलिका - मुनि महेन्द्रकुमार, पृ. 34
14. Physics & Philosophy - P. 102-103
15. The Universe and Dr. Einstine - P. 21-22
16. वही, - P. 78
17. The Philosophy of Space & Time - P. 279
18. The Nature of time - P. 300-301
19. अखण्ड ज्योति, मई 97 पेज 9
20. Time & the Science, in Foreword
21. वही

प्राप्त - 21.11.98

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 33 - 42

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

रसायन के क्षेत्र में जैनाचार्यों का योगदान

■ नन्दलाल जैन *

कलिंग पुरस्कार विजेता वाल्डेमार केंफर्ट [1] ने बताया है कि संसार के समस्त वैज्ञानिकों में दो - तिहाई वैज्ञानिक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रसायनज्ञ होते हैं। इस कथन से वर्तमान रसायन - विज्ञान के विषय क्षेत्र की महत्ता और व्यापकता का अनुमान लगता है किन्तु प्राचीन काल में इस शब्द का उपयोग और अर्थ पर्याप्त सीमित था। संभवत: यह तो दसवीं सदी के बाद से ही व्यापक और व्यापकतर होता रहा है। प्राचीन जैन शास्त्रों में यह शब्द बहुत कम स्थानों पर मिलता है। स्थानांग (8.26) एवं मूलाचार (6.452) में यह शब्द चिकित्सा के भेदों के रूप में एक - एक बार आया है जिसका अर्थ टीकाकार वसुनंदि (ग्यारहवीं सदी) और वृत्तिकार अभयदेव (ग्यारहवीं सदी) ने किया है।

वसुनंदि	अभयदेव
1. चर्मशैथिल्य / श्वेतकेश निराकारक शास्त्र	1. स्वास्थ्य वर्धक शास्त्र
2. दीर्घायुष्य - दाता शास्त्र	2. आयुष्यवर्धक शास्त्र
3. —	3. अमृत - तुल्य रस का शास्त्र
4. —	4. बुद्धिवर्धक पदार्थों का शास्त्र

इससे यह अनुमान लगता है कि दसवीं - ग्यारहवीं सदी तक रसायन का विषय क्षेत्र आहार और आयुर्वेद रहा होगा। वस्तुत: वाजीकरण और क्षारतंत्र तथा अगदतंत्र भी इसके विशेष विभाग ही माने जाते होंगे। दसवीं सदी के पूर्व का समय प्राकृतिक पदार्थों का ही था। पारद के उपयोग से निर्मित एवं खनिज पदार्थ भी सामने आने लगे थे।

वास्तव में 'रसायन' 'रस' शब्द का व्युत्पन्न है। अत: 'रस' के अर्थ से भी 'रसायन' को व्याख्यायित किया जा सकता है। श्वेताम्बर आगमों में यह शब्द प्राय: 150 स्थानों पर मिलता है। [2] दिगम्बर शास्त्रों में भी यह उपलब्ध है, पर उसकी संख्या अभी अप्राप्त है। फिर भी, इसके अनेक अर्थ हैं, जो मुख्यत: आहार और आयुर्वेद से ही संबंधित हैं। इन्हें नीचे दिया जा रहा है -

रस

1. भोजन के चयापचय से उत्पन्न धातु - विशेष (सात धातुओं में प्रथम...ग्रंथस्राव आदि)
2. छह स्वादिष्ट वस्तुयें - घृत, दुग्ध, दधि, तेल, गुड़, लवण तथा गरिष्ट आहार। यह कर्म - साधनात्मक अर्थ है। इसका भाव साधनात्मक अर्थ भी किया जा सकता है। सागारधर्मामृत में व्यक्त गोरस, इक्षुरस, फलरस और धान्य रस इसके आहारपरक अर्थ के ही द्योतक हैं।
3. स्वाद, जिह्वेंद्रिय का विषय, आहार से संबंधित शब्द है। इसी के आधार पर रसनाजय, रसपरित्याग, रसगृद्धि, रसगारव आदि शब्द विकसित हुए हैं।
4. कर्मवाद में 'रस' नाम की नामकर्म की एक प्रकृति है जिसके कारण वस्तुओं के तिक्तादि पंचरसों का अनुभव होता है।

* निदेशक - जैन केन्द्र, 8 / 662, बजरंगनगर, रींवा (म.प्र.)

5. 'रस' चतुर्गुणी पुद्गल द्रव्य का एक अविनाभावी गुण है जो उपरोक्त अर्थों को समग्रतः समाहित करता है।

6. 'रस' का अर्थ पारा भी होता है। इसके आधार पर रसेश्वर दर्शन का विकास हुआ। पारे के अनेक जीवनरक्षक एवं जीवन नाशक पदार्थ बनते हैं। इस आधार पर 'रस - वाणिज्य' शब्द प्रचलित हुआ जिसमें सावद्य पदार्थों के व्यवसाय आते हैं।

7. 'रस' का अर्थ 'द्रव' या तरल पदार्थ भी होता है जिन्हें भार की तुलना में आयतन के रूप में मापा जाता है। 'रस' के आधार पर ही धान्यमान के बदले 'रस - मान' का प्रचलन हुआ।

8. 'रस' एक विशेष प्रकार की ऋद्धि भी होती है जिसके धारक के दर्शन एवं वचन से रूक्ष आहार की कोटि स्वादिष्ट आहार पदार्थों में परिणत हो जाती है।

9. कर्मवाद के अनुसार, इसका बंध चार प्रकार का होता है। इसमें से चौथा बंध अनुभाग / अनुभाव या रसबंध भी कहलाता है। यहां 'रस' का अर्थ कर्मबंध की तीव्रता एवं विपाक से संबंधित है।

10. 'रस' जैन जगत के शिखरी पर्वत के एक शिखर का नाम भी है।

11. 'रस' पर्वत - शिखर पर रहने वाली देवी रसदेवी कहलाती है।

12. साहित्यकारों एवं मनोवैज्ञानिकों को आनंद - दाता के रूप में नव या ग्यारह 'साहित्यिक रस' भी माने गये हैं।

फलतः 'रस' शब्द से भौतिक और भावात्मक - दोनों प्रकार के अर्थ लिये जाते हैं। 'रस' पद पुद्गल द्रव्य को सैद्धांतिकता देता है और जैन भूगोल को संज्ञायें देता है। हम यहां 'रस' शब्द के भौतिक अर्थों के आधार पर ही 'रसायन' की चर्चा करेंगे।

शास्त्रों में 'रस' शब्द के अतिरिक्त, 'रस - परिणाम' शब्द भी आता है। चूंकि जैनों में रूप, रस, गंध एवं स्पर्श अविनाभावी होते हैं, अतः इनमें होने वाले भौतिक या रासायनिक परिवर्तन इस पद से संकेतित होते हैं। प्रारंभिक युग में मुख्यतः भौतिक परिवर्तन ही समाहित थे। उत्तरवर्ती काल में अनेक रासायनिक परिवर्तन भी (भोजन का चयापचय, मद्य आदि का किण्वन द्वारा निर्माण आदि) समाहित होते रहे हैं। फलतः शास्त्रीय 'रस - परिणाम' शब्द वर्तमान रसायन शब्द के पूर्णतः तो नहीं, पर अंशतः समकक्ष माना जा सकता है।

यह तो स्पष्ट नहीं है कि सर्वजीववादी जैनों ने अजीव द्रव्यों - विशेषकर पुद्गल द्रव्य की मान्यता कब से स्वीकार की है, पर शस्त्रोपहति से निर्जीवकरण की चर्चा अवश्य शास्त्रों में आयी है।[3] पुद्गल शब्द जैन और बौद्धों का विशिष्ट परिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ जीव और आत्मा - दोनों लिया जाता था। परन्तु कुछ समय बाद पुद्गल अजीव एवं मूर्त द्रव्य के लिये प्रचलित हो गया। चूंकि पुद्गल का एक गुण 'रस' भी है, अत 'रस' शब्द में केवल औषध और आहार - पदार्थों के साथ अन्य पदार्थ भी समाहित हो गये एवं रसायन में सभी प्रकार के 'पुद्गल परिणाम' समाहित हुए। वर्तमान में अन्न - पाचन और रस निर्माण की क्रिया जीव रसायन कहलाती है, औषध, विष, वाजीकर पदार्थ चिकित्सा - रसायन के अन्तर्गत आते हैं। विभिन्न प्रकार के धान्य एवं प्रमुख खाद्य पदार्थ कार्बनिक रसायन में आते हैं और पारद एवं पारद के यौगिक, लवण आदि अकार्बनिक रसायन में समाहित

होते हैं। इस प्रकार जैन शास्त्रों में रसायन की चार शाखाओं का समेकीकृत तो नहीं, पर यत्र - तत्र बिखरा हुआ वर्णन मिलता है। ये सभी पुद्गल पदार्थ हैं। अध्यात्मप्रधानी जैनाचार्यों ने इन विवरणों के माध्यम से रसायन - विज्ञान के अनेक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर प्रकाश डाला है। जैन शब्दावली में हम रसायन को 'पुद्गलायन' कह सकते हैं।

रसायन विज्ञान के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने वाले जैनाचार्यों की सूची काफी लम्बी है। इनमें आचार्य गौतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी, आचार्य पुष्पदन्त, भूतबलि, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंक और विद्यानंद, धवलाकार वीरसेन एवं उग्रादित्याचार्य प्रमुख हैं। इनके द्वारा लिखित एवं उपलब्ध साहित्य के आधार पर इस क्षेत्र में उनके समग्र योगदान की चर्चा की जा रही है।

आगम ग्रंथों में रसायन शास्त्र

दिगम्बर परम्परा में भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट एवं गणधर - ग्रंथित आगमों का, अनेक कारणों से, संभवत: अकलंग युग के बाद, स्मृति - ह्रास मान लिया है पर श्वेताम्बर परम्परा में अनेक वाचनाओं के आधार पर परिष्कृत परिमार्जित आगम ग्रंथ पाये जाते हैं। यह परम्परा उन्हें गणधर सुधर्मा स्वामी द्वारा ग्रंथित मानती है। इन ग्रंथों में न केवल रसायन शास्त्र संबंधी विवेचनायें ही हैं, अपितु धार्मिक सिद्धांतों को भी भौतिक एवं रासायनिक प्रक्रमों के उदाहरणों से उद्घाटित किया गया है। भगवती सूत्र में परमाणु एवं स्कंधों के विषय में पर्याप्त चर्चा आई है। आहार और औषध संबंधी रसायन तो अनेक आगमों में पाया जाता है।

आगमोत्तर काल में रसायन शास्त्र

आगमोत्तर काल के अनेक आचार्यों के ग्रंथों में रसायन के अंतर्गत निम्न विषय पाये जाते है -

1. **परमाणुवाद** - इसमें परमाणु का स्वरूप, प्रकृति, भेद - प्रभेद और परमाणु - बंध की प्रक्रिया समाहित होती है।
2. **स्कंधवाद** - इसमें परमाणुओं के बंध से निर्मित स्कंधों का स्वरूप और उसके भेद - प्रभेदों के साथ अनेक विशिष्ट स्कंधों का वर्णन समाहित है।
3. **भौतिक और रासायनिक क्रियायें** - इसके अंतर्गत न केवल भिन्न - भिन्न कोटि की क्रियायें ही बताई गई हैं, अपितु उनके निदर्शन से धार्मिक सिद्धांत भी समझाये गये हैं।
4. **कर्मवाद** - अनेक प्रकार के परमाणु समूहों में कर्म - वर्गणा भी एक है जो जीव के साथ संबद्ध होकर उसके भवभ्रमण में कारण होती है। इन कर्म - वर्गणाओं की विवेचना अन्य तंत्रों (Systems) की तुलना में जैन तंत्र में सूक्ष्म और गहन रूप से की गई है।

पदार्थों की मौलिक रचना - परमाणुवाद

प्राय: उपरोक्त सभी आचार्यों ने पदार्थों की मौलिक रचना के दो घटक बताये हैं - (1) अणु / परमाणु और (2) भौतिक या रासायनिक स्कंध जो परमाणुओं के समुच्चय से मूलत: निर्मित होते हैं। इनमें परमाणु को 'अणु' भी कहा गया है। हम यहां उसे 'परमाणु' ही कहेंगे। इसके गुणों में अविभागित्व, अविनाशित्व आदि अनेक गुण समाहित हैं। मूलत:

परमाणु सभी समान एवं परिमंडल होते हैं पर उनके कार्यों के आधार पर उन्हें (1) कारण परमाणु, आदर्श परमाणु, स्वभाव परमाणु और (2) कार्य परमाणु, व्यवहार परमाणु या विभाग परमाणु कहते हैं।[4] यद्यपि कुंदकुंद के ग्रंथों में कारण एवं कार्य परमाणु का उल्लेख मिलता है पर अनुयोग द्वार[5] एवं जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में आदर्श और व्यवहार परमाणु का भी उल्लेख है। व्यवहार परमाणु, वस्तुत: स्कंध ही होना चाहिये क्योंकि यह अगणित आदर्श परमाणुओं से मिलकर बनता है।

परमाणु के विवरण में कुंदकुंद और उमास्वामी ने उसके विस्तार की चर्चा नहीं की है पर त्रिलोक प्रज्ञप्ति[6] (पाँचवीं सदी) में उसका विस्तार अनुमानित है। यह विस्तार व्यवहार परमाणु का मानना चाहिये। इसके अनुसार, इसकी साइज 10^{-13} से.मी. आती है। विभिन्न शास्त्रों में परमाणुओं के चार प्रकार के गुणों का उल्लेख है -

1. परमाणु की गतिशीलता
2. परमाणु की अविनाशिता
3. परमाणुओं में बंधनगुण
4. परमाणुओं के भेद - प्रभेद

भगवती,[7] स्थानांग[8] तथा अन्य ग्रंथों में परमाणु की स्वाभाविक या प्रयोगज गतिशीलता का अच्छा विवरण मिलता है। वहां तो इनकी न्यूनतम (प्रदेश / समय) और उच्चतम (लोकांत प्रति समय = 10^{27-47} सेमी. / समय) गति का भी विवरण है। हां, सामान्य अवस्था की गति का विवरण वहां अनुपलब्ध है। यह गतिशीलता सामान्यत: स्थितिस्थापी और विशेष परिस्थितियों (धर्म द्रव्य का अभाव, उच्चतम वेग और बंधक परमाणुओं की उपस्थिति) में बंधनकारी भी होती है। भगवती में परिस्थितियों के आधार पर परमाणुओं की सात प्रकार की गति का उल्लेख है।

मूल परमाणु की अविनाशिता प्राय: सभी दर्शनों ने मानी है। तथापि जैन दर्शन का मत है कि द्रव्यत्व की दृष्टि से यह अविनाशी है, पर पर्यायत्व की दृष्टि से यह निरंतर परिवर्तनशील है। यह आधुनिक विज्ञान के 'अविनाशिता (द्रव्यमान - ऊर्जा) नियम' का पूर्वरूप ही है। इस परिवर्तनशीलता में इसकी संकोच - विस्तारशीलता भी समाहित है। यह गुण अन्य दर्शनों में नहीं माना जाता।

शास्त्रों में परमाणुओं में बंधन - गुण माना है। इसका कारण उनमें विद्यमान स्निग्ध - रूक्षता के विरोधी गुणों की उपस्थिति है। कुन्दकुन्द और उमास्वामी[9] ने इन गुणों को स्थूल रूप से ही लिया लगता है परन्तु पूज्यपाद[10] ने इसे विद्युत - मूलक मानकर बंधकता की व्याख्या को नया आयाम दिया। भगवती के युग में बंधकता का कारण परमाणुओं में विद्यमान विशेष प्रकार के चिपकावक की उपस्थिति मानी गई थी पर इसे स्निग्ध - रूक्ष गुणकता का पूर्ववर्ती रूप ही मानना चाहिये। षट्खंडागम[11] तथा उत्तरवर्ती आचार्यों ने परमाणु - बंधन के चार आधारभूत नियम दिये हैं जो उत्तरवर्ती आचार्य भी मानते हैं -

1. परमाणुओं में बंधन, विरोधी वैद्युत गुणों के कारण होता है। उमास्वामी ने **'स्निग्ध - रूक्षत्वात् बंध'** कहकर इसका निर्देश किया है। यहां एक वचन होने से केवल विरोधी - गुणी बंध ही विवक्षित है। कुछ वैज्ञानिक इसे बहुवचनी सूत्र मानकर इससे तीन कोटि के बंध मानते लगते हैं। यह मूलसूत्र के अभिप्राय का विपरिणमन लगता है।

2. निम्नतर (0 या 1) कोटि की वैद्युत प्रकृति के परमाणुओं के बीच बंध नहीं होता।

3. यदि परमाणुओं में वैद्युत गुण समान हों, तो उनमें विशेष परिस्थितियों में ही बंध होता है। यदि विरोधी गुण समान हों, तो भी बंध संभव है (हाइड्रोजन अणु या सोडियम हाइड्राइड आदि)। पूर्वाचार्यों की तुलना में अमृतचंद्र सूरि [12] (तत्वार्थसार) की व्याख्या के अनुसार, यह नियम यहां सकारात्मक रूप में दिया गया है। इसके पूर्व के आचार्यों ने इस नियम को नकारात्मक रूप में माना था। इससे अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हुई होंगी। इस प्रकरण में अमृतचंद्र सूरि का योगदान विशेष महत्वपूर्ण है और आधुनिक मान्यताओं के समकक्ष है।

4. जिन परमाणुओं में वैद्युत गुण (समान या असमान) दो से अधिक होता है, उनमें बंधन होता है। इस नियम की व्याख्या में भी मतभेद है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि वाचक उमास्वाति की व्याख्या, आज की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है। पं. फूलचंद्र शास्त्री [13] का कथन है कि कुंदकुंद और उमास्वामी की तुलना में षटखंडागम की परमाणु - बंध संबंधी व्याख्या अधिक व्यावहारिक है। इसके विपर्यास में श्वेताम्बर - व्याख्या बीसवीं सदी तक के अनुरूप जाती है। इससे संबंधित सारणी शास्त्री एवं जवेरी ने अपनी पुस्तकों में दी है। इन सारणियों से स्पष्ट है कि परमाणुओं की शास्त्रीय बंधकता के उपरोक्त रूप वर्तमान में मान्य तीन प्रकार की संयोजकता के समकक्ष ही लगते हैं।

परमाणु मूलतः तो एक - समान होते हैं पर व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें (1) सूक्ष्म या आदर्श और (2) व्यवहार के रूप में विभाजित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रों में परमाणु - बंध या उनके अनेक गुणों के निरूपण का आधार व्यवहार परमाणु ही होंगे क्योंकि आचार्यों ने बंधन के सिद्धांत कहकर भी उनके उदाहरण नहीं दिये हैं। साथ ही, आज यह सुज्ञात है कि लघुतर या मूलभूत कणों के संयोग - वियोग में ऊर्जा की, सामान्य संयोगों की तुलना में, अत्यधिक मात्रा व्ययित होती है। यद्यपि परमाणुओं के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के रूप में चार भेद बताये गये हैं, फिर भी उनके रूप, रस, गंध, स्पर्श के रूप में चार भौतिक गुणों के क्रमचय - समुच्चय से $2 \times 5 \times 5 \times 4 = 200$ भेद भी हो सकते हैं। यह विवरण दिगम्बर ग्रंथों में तो नहीं, पर श्वेताम्बर ग्रंथों में सुलभता से पाया जाता है। भौतिक गुणों पर आधारित परमाणु - वर्गीकरण जैन दर्शन की एक विशेषता है। आज भी द्रव्यमान के आधार पर परमाणुओं का विभाजन किया गया है।

परमाणुओं के विभाजन के उपरोक्त रूपों के अतिरिक्त एक अन्य रूप भी है जिसका उल्लेख भगवती में पाया गया है। इसका स्वरूप सूक्ष्मतर है। इसके अनुसार, परमाणु दो प्रकार के होते हैं -

1. चतुस्पर्शी : (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष स्पर्श)
2. अष्ट - स्पर्शी : (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कठोर स्पर्श)

चतुस्पर्शी परमाणु, फलतः उर्जा रूप होते हैं जबकि अष्टस्पर्शी परमाणु सामान्य परमाणु के समान होते हैं। अकलंक भी [14] अष्टस्पर्शी परमाणुओं को स्कंध (व्यवहार परमाणु) मानते हैं। उनके अनुसार भी, द्रव्यमान और घनत्व मूल परमाणु का गुण नहीं है। यह पाया गया है कि परमाणु संबंधी उपरोक्त जैन मान्यतायें अमृतचंद्र सूरि के युग के बाद यथावस्थित हैं।

स्कंधवाद

सामान्यत: स्कंध परमाणुओं के भौतिक या रासायनिक दृश्य या अदृश्य समुच्चय को कहते हैं। यह समुच्चय **'भेद - संघातेभ्य: उत्पद्यतें'** के बहुवचनांत सूत्र में उल्लिखित तीन विधियों से निष्पन्न होता है -

1. भेद से : बड़े स्कंधों के विभेदन से
2. संघात से : परमाणुओं के संयोजन / सम्मेलन से सूक्ष्म को स्थूल बनाने से
3. भेद और संघात के मिश्रित प्रक्रम से

उमास्वामी ने तो यह भी बताया है कि दृश्य स्कंध 'भेद - संघात' के द्वितय प्रक्रम से बनते हैं। कुंदकुंद के अनुसार, सभी स्कंध परमाणुओं के विभाग परिणमन हैं। नेमिचंद्राचार्य ने बताया है कि स्कंधों में परमाणु प्राय: गतिशील ही बने रहे हैं। सभी स्कंध परमाणुओं के कार्य हैं और इनसे परमाणुओं का अस्तित्व ज्ञात होता है। ये स्कंध सूक्ष्म (चक्षुषा अदृश्य) और स्थूल - दोनों प्रकार के होते हैं। इन स्कंधों को प्रारंभ में वर्तमान समकक्षता के लिये 'अणु' माना जाता था, पर चूंकि 'अणु' तो रासायनिक समुच्चय है और स्कंध भौतिक समुच्चय (शर्करा - रेत) भी हो सकता है, अत: अब स्कंध को 'समुच्चय' कहना ही अधिक उपयुक्त है।

भगवती और स्थानांग में स्कंधों का विभाजन उनमें विद्यमान परमाणु या प्रदेश संख्याओं के आधार पर उल्लिखित है जहां 42 से 1786 तक स्कंध संख्या बताई गई है।[15] पर इस आधार को परम्परा की स्वीकृति नहीं मिल सकी। फलत: स्कंधों को कुंदकुंद और अन्य आचार्यों ने अनेक प्रकार से विभाजित किया। इनमें कुंदकुंद का षट्प्रकारी वर्गीकरण भी समाहित है। ऐसा लगता है इसे भी लोकप्रियता न मिल सकी क्योंकि इसे भी अन्य आचार्यों ने उल्लिखित नहीं किया। स्कंधों का 8 या 23 वर्गणागत विभाजन अनेक आचार्यों ने माना है। षट्खंडागम का तो एक खंड ही वर्गणाखंड है। इसके अंतर्गत प्राय: सभी प्रकार के दृश्य एवं अदृश्य स्कंध समाहित होते हैं। प्रज्ञापना में समुच्चयन विधि से स्कंध के 530 भेद बताये हैं। परमाणुओं की संख्या और उनके गुणों की तीव्रता की कोटि के आधार पर स्कंधों के अगणित भेद भी बताये गये हैं। स्कंधों का यह वर्गीकरण ईसा पूर्व की सदियों का है जिसमें उत्तरवर्ती काल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

महावीर के पूर्ववर्ती या समकालीन कात्यायन के सात तत्वों की तुलना में कुंदकुंद ने धातु चतुष्क को मूल स्कंध माना। पंचास्तिकाय एवं अन्य ग्रंथों में इनके भेद - प्रभेद भी मिलते हैं। ये उत्तराध्ययन[16] प्रज्ञापना[17] एवं जीवाभिगम[18] आदि पूर्ववर्ती ग्रंथों में भी पाये जाते हैं। चार मूलभूत स्कंधों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु हैं। यद्यपि ये मूलत: एकेंद्रिय कोटि के पदार्थ हैं, फिर भी अनेक कारणों से ये अजीव स्कंध हो जाते हैं। सामान्यत: इनमें पृथ्वी, जल द्रव, वायु गैस एवं तेज ऊर्जा के प्रतिनिधि हैं। प्रत्येक कोटि में कुछ अपवाद भी हैं।

पृथ्वी - स्कंध के अंतर्गत भूगर्भ और भूतल पर विद्यमान 36 - 48 पदार्थों के नाम हैं। इन नामों में समय - समय पर संयोजन होते रहे हैं। मणियों की संख्या में वृद्धि हुई है। पारद और रांगा का नाम जुड़ा है। इन स्कंधों में 6 धातुयें, 10 रासायनिक यौगिक (प्राकृतिक) एवं 20 मणियां भी समाहित हैं। मिट्टी और पत्थर के विभिन्न रूप भी हैं।

कुंदकुंद ने स्वर्ण के अयस्कों को सुहागे एवं लवण के साथ संगलित कर शुद्ध रूप में प्राप्त करने की चर्चा की है। सीसे के अयस्कों को नागफणी एवं गोमूत्र के साथ उत्तापित करने से भी सोने को प्राप्त करने की बात कही है। वह घर्षण, मारण, काटन आदि विधियों से जांचा जाता है।

प्रज्ञापना में जल के 19 भेद बताये गये हैं। अन्य ग्रंथों में इनकी संख्या 6 - 7 के बीच पाई जाती है। इसके अंतर्गत मद्य, दुग्ध, इक्षुरस, अम्लरस आदि का भी उल्लेख है। जल में जलयोनिक एवं वायुयोनिक जीव पाये जाते हैं। जल का शोधन उबालने तथा फिटकरी से किया जाता है। यह अन्य पदार्थों का शोधक भी है। किण्वित या खट्टे जलों का भी उल्लेख है। जल के भेदों में गैसीय जल (भाप) का उल्लेख नहीं है। जीवाभिगम में 21 स्रोतों से मद्य प्राप्त करने का उल्लेख है। मूलाचार के अनुसार किण्वित पदार्थों (घी आदि) के भक्षण योग्य बने रहने की सीमा चौबीस घंटे की है। जीवभिगम में द्रव पदार्थों के कणों का आधार घनीय बताया गया है और ठोस कणों की आकृति गोलीय बताई गई है।

ऐसा प्रतीत है कि मूलाचार और उत्तरवर्ती काल में वायु गैस कोटि के पदार्थों का प्रतिनिधि था। इसीलिये वायु के 7 भेदों में केवल उसी के रूप गिनाये गये हैं। हां, प्रज्ञापना में अवश्य इसके 19 भेद गिनाये गये हैं। इनमें मुँह (और नाक या श्वासोच्छवास) की वायु परिगणित है। यह प्रमुखतः कार्बनडाइऑक्साइड है। वायु तो अनेक गैसों का मिश्रण है। इसके अतिरिक्त अन्य वायुओं का विवरण उत्तरवर्ती काल में संयोजित नहीं हुआ है। वायु के प्रमुख गुणों में जलने में सहायक होना है। इसके विपर्यास में, तूफान ज्वलन क्रिया का प्रतिरोधी है। वायु श्वासोच्छवास का एक अंग है और इसमें संकोच - विस्तार के गुण पाये जाते हैं। इसमें सूक्ष्म जीवाणु भी पाये जाते हैं।

अग्नि को आगमकाल में सुज्ञात ऊर्जाओं का प्रतीक माना जा सकता है। इसके 6 - 12 भेद बताये गये हैं। इनमें ताप, प्रकाश एवं विद्युत (यहां तक कि ईंधन - रहित अग्नि) ऊर्जाओं का समाहरण है। यह भी उनके दृश्य एवं प्राकृतिक रूपों में है। प्रज्ञापना में मणिज अग्नि, घर्षण अग्नि, उल्का आदि का भी उल्लेख है। ऊर्जा के ये तीन प्रमुख रूप शास्त्रीय युग में सुज्ञात थे। तैजस ऊर्जा के रूप में हमारे शरीर तंत्र में तैजस शरीर माना गया है जो हमारे आहार के पाचन एवं शरीर तंत्री के संचालन के लिये ऊर्जा स्त्रोत का काम करता है। अकलंक ने बताया है कि तैजस न केवल हमारे शरीर का संचालक है अपितु यह मिट्टी को पकाकर घड़े में परिणत करता है और धातुओं में अवशोषित होता है। इस प्रकार, तैजस ऊर्जा रासायनिक क्रियाओं के संपादन में काम आती है।

भौतिक और रासायनिक क्रियायें [19]

रसायन शास्त्र में भौतिक और रासायनिक क्रियाओं का विवरण किया जाता है जो परमाणुओं एवं स्कंधों के संयोग - वियोग से संपन्न होती है। शास्त्रों में आचार्यों ने इस संबंध में अपने अनेक अवलोकनों के माध्यम से जैन सिद्धांतों को समझाया है। जैन ने 29 अवलोकनों का संकलन किया है जिनमें 18 तो भौतिक क्रियायें हैं, 8 रासायनिक क्रियायें हैं और 3 अपरिभाषित क्रियायें हैं। भौतिक क्रियाओं में सामान्यतः अवस्था परिवर्तन (दूध का उष्णीकरण, प्रशीतन, विसरण, अविलेयता, पदार्थों का द्रवण एवं ठोसीकरण) एवं भौतिक स्वरूप में परिवर्तन (बादल, कुहरा, आकाश - वृक्ष, झंझावात, तन्तुओं से वस्त्र निर्माण, क्रिस्टलन,

जल - विलयन, धातुओं की अक्रियता आदि) समाहित होते हैं। रासायनिक परिवर्तनों में मिट्टी के घड़े बनाना, बत्ती का जलना, जल में सीप निर्माण, कृषि - उत्पाद, किण्वन, अयस्कों से धातु - निष्कर्षण आदि समाहित हैं। यह पाया गया है कि शास्त्रों में भौतिक परिवर्तनों के उदाहरण अधिक हैं। यही नहीं, जो रासायनिक क्रियायें भी वर्णित हैं, उनकी क्रियाविधि या रासायनिक समीकरणीय व्याख्या भी अनुपलब्ध है। उपरोक्त में से अनेक क्रियाओं का कुंदकुंद ने भी वर्णन किया है।

कर्मवाद[20]

अन्य तंत्रों (दर्शनों) के विपर्यास में, कर्मवाद जैनों का पर्याप्त विकसित सिद्धांत है। कर्म सूक्ष्म परमाणुओं के समूह हैं जो कर्मवर्गणा का रूप ग्रहण कर सशरीरी मूर्त जीव से संबंधित होकर उसे भवभ्रमण कराते हैं। कर्मवर्गणायें राग, द्वेष, मोह, सुख - दुख आदि के रूप में विविध प्रकृति की होती हैं। जीव भी अपनी मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्तियों एवं मनोभावों के कारण विशिष्ट प्रकृति का होता है। भगवती, प्रवचनसार और परमात्मप्रकाश में इनकी वैद्युत प्रकृति का उल्लेख भी किया गया है। फलतः कर्म और जीव परस्पर में अपनी विरोधी वैद्युत प्रकृति के कारण एकक्षेत्रावगाही एवं अन्योन्यानुप्रवेशी बंध बनाते हैं। यह बंध ईर्यापथिकी क्रियाओं में अदृढ़ होती है और सकषायिकी क्रियाओं में दृढ़ होता है। पर जीव - कर्म के बंध की प्रकृति भौतिक है या रासायनिक, इस पर शास्त्रों में चर्चा नहीं है। तथापि वहां यह अवश्य बताया गया है कि ध्यान और तप की क्रियाओं से यह बंध विच्छिन्न हो सकता है। इस प्रकार, कर्मवाद भी रसायन के एक अंग के रूप में माना जा सकता है।

रसायन विज्ञान से संबंधित अन्य विवरण

(अ) आहार विज्ञान - प्रारंभ में जैन तंत्र श्रमण - तंत्र का ही प्रतिरूप था। जीवन की सात्विकता के लिये आहारचर्या उसका विशिष्ट प्रतिपाद्य रहा। आचारांग से लेकर आशाधर के युग तक इसका वर्णन मिलता है। इसमें काफी समरूपता है। आहार के शारीरिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्यों के विवरण के साथ उसके चयापचय की क्रिया से निर्मित होने वाले सप्तधातु तत्वों का विवरण अनेक ग्रंथों में मिलता है। प्रारंभ में साधु के लिये भक्ष्य, अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य की चतुरंगी चली। बाद में चटनी और लोंग भी इसमें जोड़े गये। इनके शास्त्रीय विवरणों से ज्ञात होता है कि इन खाद्यों में शाक - सब्जियों को विशेष स्थान नहीं था। बाद में जब गृहस्थों की आहारचर्या का वर्णन किया गया, तब उसमें भी इनकी सीमा थी। अभक्ष्यता के मूल चार आधारों पर अनेक पदार्थ अभक्ष्य की कोटि में आ गये। साथ ही, स्वास्थ्य, लोकरूढ़ि आदि भी इनके आधार बने। हिंसा का अल्पीकरण तो भक्ष्यता का प्रमुख आधार रहा ही। वर्तमान विचारधारा के अनुसार, अशन कोटि में कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन आते हैं, पान कोटि में दूध, घी व वसायें आती हैं। स्वाद्य कोटि में खाद्य - मसालें एवं रोगप्रतीकार - क्षमता बढ़ाने वाले पदार्थ आते हैं। आजकल विटामिन - खनिज घटकों के युग के अनुरूप शास्त्रीय जैन आहार - शास्त्र में विशेष कोटि नहीं थी। फिर भी, आयुर्वेद शास्त्र में आहार के जिन रूपों का वर्णन है, वह कैलोरीमान की दृष्टि से उपयुक्त ही है।

अभक्ष्य पदार्थों में मद्य, मांस और मधु का प्रमुख स्थान है। इनकी अभक्ष्यता मुख्यतः हिंसक आधार एवं दृष्टिगोचर अनिच्छित प्रभावों के आधार पर की गई है। जमीकंदों

की अभक्ष्यता भी, संभवतः अधिक हिंसा की दृष्टि से (जमीन खोदकर फल निकालना आदि) की गई है। पर आयुर्वेदज्ञ और आज का विज्ञान इन्हें रोगप्रतीकार - सहता - वर्धक मानने लगा है।

तेरहवीं सदी तक के साहित्य में खाद्य - कोटियों के स्थूल विवरण ही हमें मिलते हैं, उनके रासायनिक संघटन और कैलोरी - क्षमता की चर्चा नहीं है। फिर भी, बीसवीं सदी में आहार विज्ञान जीव - रसायन का विशिष्ट अंग बन गया है। इसके सूक्ष्म परिज्ञान एवं उपयोग से हमारी दीर्घजीविता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। तंडुल वैचारिक में तो इसका भी परिकलन दिया गया है कि एक सामान्य व्यक्ति सौ वर्ष में कितना अन्न खा सकता है।[21]

(ब) औषध विज्ञान – यह बताया गया है कि रसायन का विकास औषध विज्ञान से ही हुआ है। वस्तुतः तो आहार को भी औषध ही माना जाता है। जैनों के प्राणावाय पूर्व में इस विज्ञान की भिन्न शाखाओं का वर्णन है। औषध शास्त्र के आठ प्रमुख अंगों में बाल चिकित्सा, काय चिकित्सा, विष - शास्त्र एवं दीर्घजीविता मुख्यतः रसायन से संबंधित हैं। इनके अंतर्गत शास्त्र वर्णित 64 रोगों का 29 भौतिक विधियों तथा अनेक प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से उपचार किया जाता है। ये सभी पदार्थ रासायनिक यौगिक और उनके मिश्रण है। अनेक प्राकृतिक पदार्थों के क्वथन, आसवन, ऊर्ध्वपातन आदि से निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं। अनेक प्रकार के मिश्रण (त्रिफला आदि) तैयार किये जाते हैं। औषध विज्ञान में प्रयुक्त अनेक विधियां आज के रसायन विज्ञान का प्रमुख अंग बनी हुई हैं। इसी प्रकार विष विज्ञान के अंतर्गत जंगम एवं पादप विषों का वर्णन है। दीर्घजीविता के अंतर्गत ऐसे औषध रसायन बनाये जाते हैं जो वृद्धावस्था को विलंबित करें और बल - वीर्य को बढ़ाते रहें। औषध रसायन के अनेक संदर्भ भिन्न - भिन्न शास्त्रों में आते हैं। 9वीं सदी के उग्रादित्याचार्य ने इन्हें 'कल्याणकारक' के रूप में प्रस्तुत किया है।[22] वस्तुतः इस ग्रंथ को अहिंसक औषधों का रसायन कहना चाहिये। औषध विज्ञान में औषधों का प्रभाव शरीर तंत्र में विद्यमान अनेक रसायनों से होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं का ही फल है।

उपसंहार

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आगम युग से लेकर तेरहवीं सदी तक के जैनाचार्यों ने रसायन की सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक शाखाओं के न्यूक्लियन तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इस योगदान की विवेचना सम - सामयिक दृष्टि से ही मूल्यांकित की जानी चाहिये। इस विवेचना में यह पाया गया है कि नवमी - दसवीं सदी तक का जैन शास्त्रों में वर्णित रसायन विज्ञान अन्य दर्शन - तंत्रों की तुलना में उच्चतर कोटि का रहा है। यह ज्ञान समग्र रसायन के विकास की परम्परा में मील के पत्थर के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उपरोक्त कालसीमा में अर्जित ज्ञान प्राकृतिक पदार्थों एवं मानसिक चिंतनों पर आधारित रहा है। पिछली कुछ सदियों में परिवर्तित एवं संश्लेषित पदार्थ भी इसकी सीमा में आये हैं। साथ ही, क्रिया और क्रियाफल के बीच क्रियाविधि संबंधी अंतराल का परिज्ञान भी बढ़ा है और रसायन भी अधिक सूक्ष्मता की ओर बढ़ा है।

संदर्भ

1. वाल्डेमार कैंफर्ट : साइंस टुडे एण्ड टुमारो, डैनिस डॉब्सन, लंदन, 1947
2. नथमल, मुनि : आगम शब्दकोश, जैन विश्व भारती, लाडनूं, 1980
3. वही : दशवैकालिक : एक समीक्षात्मक अध्ययन, तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, 1967

4. कुंदकुंद, आचार्य : नियमसार, दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, 1985
5. आर्यरक्षित : अनुयोगद्वार सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1987
6. आचार्य यतिवृषभ : त्रिलोकप्रज्ञप्ति - 1, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1963
7. सुधर्मा स्वामी : भगवती सूत्र, 1 - 7, साधुमार्गी संस्था, सैलाना, 1937 - 52
8. वही : स्थानांग, जैन विश्वभारती, लाडनूं, 1976
9. आचार्य उमास्वामी : तत्वार्थ सूत्र, वर्णी ग्रंथमाला, काशी, 1949
10. आचार्य पूज्यपाद : सर्वार्थसिद्धि, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1971
11. आचार्य, धरसेन : षट्खंडागम - 14, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1982
12. अमृतचंद्र सूरि : तत्वार्थसार, वर्णी ग्रंथमाला, काशी, 1970
13. फूलचंद्र शास्त्री (सं.) . तत्वार्थ सूत्र, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1957
14. अकलंक, भट्ट : तत्वार्थ वार्तिक - 2, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1957
15. जैन, एन.एल. : साइंटिफिक कंटेंट्स इन प्राकृत कैनन्स, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, काशी, 1996
16 — . उत्तराध्ययन, तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, 1967
17 आर्य, श्याम : प्रजापना सूत्र, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1984
18. — : जीवाभिगम सूत्र, शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, 1971
19. देखिये संदर्भ 15, पृ. 206 - 221
20. जैन, एन. एल. : कर्म और कर्मबंध, एक विवेचन, (डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल अभि. ग्रंथ) रींवा, 1997
21. — : तंदुल वैचारिक, साधुमार्गी संस्थान, बीकानेर, 1949
22. उग्रादित्याचार्य : कल्याणकारक, रावजी सखाराम ग्रंथमाला, शोलापुर, 1940

प्राप्त : 20.3.97

आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज का आवश्यक सन्देश

मैं शारीरिक शिथिलता एवं आयु की अधिकता आदि परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए मूलसंघ की आम्नाय के अनुसार **'नियम - सल्लेखना'** दिनांक 16 जून, 1999 (समय मध्याह्न 11.22 बजे) को ले रहा हूँ। शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि के अनुसार मैं इसका अनुपालन करूँगा। हमने अपने इस मनुष्य भव की आयुकर्म के अन्तिम वर्ष किसी भी सिद्धक्षेत्र पर ही व्यतीत करके आत्मतत्त्व की आराधना एवं समताभाव की साधनापूर्वक शांति से पूर्ण करने का विचार किया है। **(मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्तये सुखसंपदः)**

मैं समस्त श्रावक - समुदाय एवं भक्तजनों को यह सानुराग - निर्देष देना चाहता हूँ कि मेरी उपस्थिति में या उसके बाद मेरी किसी भी प्रकार की तदाकार प्रतिमा (स्टेच्यू आदि), चरण - चिह्न आदि न बनाये जायें। न ही मेरे नाम से किसी संस्था, भवन आदि का नामकरण किया जाये। इन कार्यों के लिये हमारे प्रातःस्मरणीय परमपूज्य आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द, धरसेन, उमास्वामी, पुष्पदन्त, भूतबलि, गुणधर आदि मूलसंघ के आचार्यों के नाम ही रखे जायें। या फिर तीर्थंकरों एवं भगवन्तों के नाम पर इनके नामकरण हों।

मेरी इस भावना का सभी भक्तजन एवं धर्मानुरागीजन आदर के साथ पालन करें - ऐसा अभिप्राय है।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च। - (तत्वार्थ सूत्र 5 / 20)

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 43 - 47

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन भूगोल : वैज्ञानिक सन्दर्भ

■ लालचन्द्र जैन 'राकेश' *

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। आज चतुर्दिक विज्ञान की विजय दुन्दुभी निनादित हो रही है। मानव जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं जिसे वैज्ञानिक आविष्कारों ने प्रभावित न किया हो। फलस्वरूप आज का तथाकथित शिक्षित वर्ग विज्ञान के गुणगान करता हुआ नहीं अघाता। बात यहीं तक समाप्त नहीं होती, कुछ विज्ञानान्ध जनों का धर्म के प्रति रूझान दिनों - दिन कम होता जा रहा है। वे धर्म के प्रति शंकालु होकर उसे अन्धविश्वास के नाम से सम्बोधित करने लगे हैं। अत: धार्मिक सिद्धान्तों में निहित वैज्ञानिक पक्ष को उजागर / उद्घाटित कर उन्हें जनमानस तक सम्प्रेषित करने की आज महती आवश्यकता है ताकि सभी जन सही समझ प्राप्त कर अपनी विकृत / भ्रमित मानसिकता से मुक्त हों, धार्मिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिक गूढ़ता से परिचित हो धर्म के प्रति श्रद्धावान हो सकें।

जैन धर्म पूर्णत: वैज्ञानिक धर्म है। जैन धर्म के प्रवर्तक / उद्घोषक तीर्थंकर और उनके उत्तरवर्ती आचार्य सुपर साइंटिस्ट थे। वे आत्मा की तह में जीने वाले तथा वस्तु तत्व के सूक्ष्मतम दृष्टा थे। वे अपने युग के पारंगत विचारक, परम आध्यात्मिक साधक एवं तल स्पर्शी गंभीर चिन्तक थे। उनकी सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि अन्तस् में प्रतिबिम्बित वस्तु स्वभाव की निर्मलता को समग्रता के साथ ग्रहण करने में पूर्ण सक्षम थी। इसलिये उनके विचार / सिद्धान्त स्पष्ट और असंदिग्ध हैं। आत्मा ही उनकी प्रयोगशाला थी। अन्त:करण के दिव्य चक्षुओं द्वारा उन्होंने जो प्रत्यक्ष अवलोकन किया वही उनकी दिव्यध्वनि द्वारा यथातथ्य उद्घोषित हुआ।

यह विस्मयकारी सत्य है कि आज से हजारों - हजारों वर्ष पूर्व जैन धर्म के तीर्थंकरों / आचार्यों ने आत्मा की प्रयोगशाला में बैठकर जिन तथ्यों की उद्घोषणा की थी वे आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं अथवा यों कहा जाये कि वैज्ञानिक उन्हीं तथ्यों को उजागर कर रहे हैं जिन्हें हमारे आचार्यों ने पूर्व में उद्घाटित किया था। इसमें वैज्ञानिकों का अपना कुछ भी नया नहीं है।

यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आज का विज्ञान तत्वों की उस सूक्ष्मता तक अद्यावधि नहीं पहुँच पाया है जिसे अध्यात्म विज्ञान ने हजारों वर्ष पूर्व उद्घाटित किया था। कारण यह है कि विज्ञान की पहुँच पदार्थों की इन्द्रियगोचर तथा यंत्रगोचर सूक्ष्मता तक है जबकि अध्यात्म अतीन्द्रिय विज्ञान है। ऋषि / मुनि आत्मा की तह में जीने वाले होते हैं अत: वे सूक्ष्मतम रहस्यों को प्रकट करने में सफल हुए।

इस लेख में जैन भूगोल से सम्बन्धित कतिपय सिद्धान्तों को आज के वैज्ञानिक सन्दर्भ में संजोया गया है तथा यह निष्कर्ष रहा कि आज विज्ञान उन्हीं तथ्यों को थोड़े बहुत अन्तर से प्रतिपादित कर रहा है जिसे तीर्थंकरों, आचार्यों ने हजारों वर्ष पूर्व घोषित कर दिया था।

* सेवानिवृत्त प्राचार्य, नेहरू चौक, गली नं. 4, गंजबासोदा, जिला विदिशा (म.प्र.)

पृथ्वी (मध्यलोक – जम्बूद्वीप) की आकृति

आज के वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक साधनों के विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है[1] कि -

1. दूसरे ग्रहों के समान पृथ्वी भी एक गोला है किन्तु ध्रुवों पर यह कुछ चपटी है। जैनागम के मध्यलोक (जम्बूद्वीप) की रचना के वर्णन के आधार पर दोनों में संगति प्रतीत होती है। जैनागम के अनुसार मध्यलोक में पृथ्वी का विस्तार / आकार थाली के सदृश है। 'इस मध्यलोक के बीचों बीच एक लाख योजन व्यास वाला अर्थात् चालीस करोड़ मील विस्तार वाला जम्बूद्वीप स्थित है।'[2]

2. इस जम्बूद्वीप में छह कुलाचल हैं, उनके नाम हैं - हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रूक्मि, शिखरी जिनकी ऊँचाई क्रमश; 100, 200, 400, 400, 200, 100 योजन है।[3]

3. अब यदि हम भरत क्षेत्र से लेकर ऐरावत क्षेत्रों के बीच में स्थित इन 6 कुलाचलों की उँचाई एवं रचना को देखें तथा भरत क्षेत्र से ऐरावत क्षेत्र तक कुलाचलों की उँचाई पर से एक कृत्रिम रेखा खींचें तो पूरा जम्बूद्वीप थालीनुमा विस्तार वाला होते हुए भी ऊँचाई से देखने पर एक गोला के सामन दिखाई देगा जो ध्रुवों पर (भरत ऐरावत क्षेत्रों में) चपटा होगा।

आधुनिक भूगोल वेत्ताओं का यह कथन कि **'पहले पृथ्वी आग का गोला थी, उसमें से गर्म पिघला हुआ लावा निकलकर चारों तरफ फैलता रहा जिसने कालान्तर में ठण्डा होकर पृथ्वी का रूप धारण कर लिया।'** इस सन्दर्भ में भी प्रो. मुकेश जैन - जबलपुर का यह निष्कर्ष तर्कसंगत है कि कोई भी पिघली हुई वस्तु जब घूमते हुए आधार पर चारों ओर फैलेगी तो उसका आकार थाली सदृश ही होगा।

पृथ्वी की संरचना के बारे में डॉ. कस्तूरचन्द्र सुमन - श्रीमहावीरजी का यह कथन भी विशेष महत्व रखता है कि 'भू की संरचना परिवर्तनशील है। आज हम जहाँ नदियाँ प्रवाहित देखते हैं, वहाँ सुदूर समय पूर्व पहाड़ थे, जहाँ पहले जंगल थे, वहाँ आज बड़े बड़े शहर हैं आदि - आदि।' इस तर्क के आधार पर हजारों लाखों वर्ष पूर्व वर्णित पृथ्वी का थालीनुमा आकार स्वयं में पूर्ण सत्य है।

पहले पृथ्वी आग का गोला थी

आज के वैज्ञानिक यह मानते हैं कि 'पृथ्वी पहले आग का गोला थी। यह धीरे - धीरे ठंडी हुई। फिर शनैः शनैः उस पर जल, वनस्पति, जीव - जन्तु आदि उत्पन्न हुए।' यदि इस कथन पर जैनागम के सन्दर्भ में विचार करें तो दोनों वर्णनों में समानता परिलक्षित होती है।

जैनागम के अवसर्पिणी काल के 6ठे भाग दुखमा - दुखमा और उत्सर्पिणी काल का प्रथम भाग सुखमा - दुखमा की स्थिति का चित्रण ध्यान देने योग्य है। यह वर्णन प्रलय

एवं सृष्टि के आरम्भ से संबंधित है।

'अवसर्पिणी के छठे काल के अन्त में मेघों के समूह सात प्रकार की निकृष्ट वस्तुओं की वर्षा 7 - 7 दिन तक करते हैं जिनके नाम अत्यंत शीतल जल, क्षार जल, विष, धुंआ, धूलि, वज्र एवं जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य अग्नि ज्वाला है। इन सात रूप परिणत हुए पुद्गलों की वर्षा 7 - 7 दिन तक होने से लगातार 49 दिनों तक चलती है।'

'उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में पुष्कर मेघ सात दिन तक सुखोत्पादक जल को बरसाते हैं जिससे वज्र, अग्नि से जली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी शीतल हो जाती है। क्षीर मेघ 7 दिन तक क्षीर जल की वर्षा करते हैं जिससे पृथ्वी क्षीर जल से भरी हुई उत्तम कांतियुक्त हो जाती है। इसके पश्चात अमृत मेघ अमृत की वर्षा करते हैं जिससे अभिषिक्त भूमि पर लता - गुल्म आदि उगने लगते हैं। इसके बाद रस मेघ 7 दिन तक दिव्य रस की वर्षा करते हैं। इस दिव्य रस से परिपूर्ण वे लता आदि सर्वरस वाले हो जाते हैं। पश्चात शीतल गंध को प्राप्त करके मनुष्य और तिर्यंच गुफाओं से बाहर निकल आते हैं।[4]

पृथ्वी पर जलीय भाग अधिक है

विज्ञान के अनुसार 'धरातल का लगभग एक तिहाई भाग ही भूमि है, शेष भाग में जल है। अर्थात धरातल के 71% भाग में जल एवं 29% भाग में थल है।[5] इस कथन पर यदि हम विचार करें तो मध्यलोक में अनेक / असंख्यात द्वीप समूह हैं। प्रत्येक द्वीप को उससे दुगने विस्तार वाला समुद्र घेरे हुए है। तथा अंतिम समुद्र स्वयंभूरमण है। जो सम्पूर्ण द्वीप समूहों से दोगुना है। इसके अलावा भी प्रत्येक द्वीप में अनेक सरोवर एवं नदियाँ हैं। उक्त वर्णन से स्पष्ट है कि धरातल का भूमि भाग जलीय भाग की अपेक्षा कम है।

द्वीप के चारों ओर जल है

'पृथ्वी के महासागर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिये समुद्रों का जल स्तर सभी जगह एक सा रहता है।'[6] यदि हम सम्पूर्ण विश्व के नक्शे को चटाई की तरह बिछाकर देखें तो नक्शे में पृथ्वी के चारों ओर जल भाग ही दिखाई देगा। जैनागम के अनुसार प्रत्येक द्वीप को चारों ओर से समुद्र घेरे हुए है, जैसे जम्बूद्वीप को लवण समुद्र आदि।[7]

वायुमण्डल का तापमान

विज्ञान के अनुसार हम जैसे - जैसे जमीन के अन्दर नीचे की ओर जाते हैं वैसे - वैसे तापमान क्रमशः कम होता जाता है।' जैनागम में नरकों के गर्मी एवं ठण्ड के दुखों का वर्णन करते हुए लिखा हैं कि प्रारम्भ के चार नरक पृथ्वियों के सभी बिल और पांचवीं पृथ्वी के 3 / 4 भाग प्रमाण बिल उष्ण हैं तथा पांचवें पृथ्वी के अवशिष्ट बिल तथा छठवीं - सातवीं पृथ्वी के बिल शीत हैं।[8] इससे आगम की वैज्ञानिकता स्पष्ट है।

विश्व स्वतः निर्मित है

विश्व स्वतः निर्मित है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सभी ग्रह परस्पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण निरालम्ब स्थित है। इस विश्व की निर्माता रक्षक या विनाशक ईश्वर नाम की

कोई शक्ति नहीं है। ऐसी वैज्ञानिक मान्यता है।

इस सन्दर्भ में जैनागम की मान्यता पूर्ण वैज्ञानिक है तथा आज के विज्ञान से मेल खाती है। जैनदर्शन की स्पष्ट घोषणा है कि -

काहू न करै न धरै को, षड्द्रव्यमयीन न हरै को।
सो लोक माँहि बिन समता, दुख सहै जीव जित भ्रमता।।[9]

यह लोक तीन वात वलयों के सहारे अलोकाकाश में निरालम्ब स्थित है, यह भी विज्ञान सम्मत है।[10]

जैनागम जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये 6 द्रव्य मानता है।[11] आधुनिक विज्ञान भी जीव, मैटर, ईथर, फील्ड, स्पेस और टाइम फैक्टर आदि के नाम से 6 द्रव्यों को स्वीकार करता है।

सौर मण्डल

आकाश में दिखाई देने वाले सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे, इन्हें जैनागम में ज्योतिष्क देव कहते हैं। इनके विमान चमकीले होते हैं अतः इनकी ज्योतिष्क संज्ञा सार्थक है।

जैनागम के अनुसार चित्रा पृथ्वी से 790 योजन से प्रारम्भ होकर 900 योजन की ऊँचाई तक अर्थात् 110 योजन में ज्योतिष्क देवों के विमान स्थित है। जैनागम में सूर्य पहले है और चन्द्रमा उसके ऊपर जबकि विज्ञान का निष्कर्ष इसके विपरीत है।

स्व. पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री, कटनी ने अपने निबंध 'जैन शास्त्रों में वैज्ञानिक संकेत'[12] में इस अन्तर का समाधान करते हुए लिखा है कि 'पहले पंडित लोग लेखन कार्य करते थे, वे जैन दर्शन के विद्वान नहीं होते थे। अतः उनसे लेखन कार्य में त्रुटि संभव है। पूज्यपाद स्वामी की जो गाथा है उसके पूर्वार्ध में ग्रहों की पृथ्वी से आकाश तक की दूरी की संख्या है और गाथा के उत्तरार्ध में ग्रहों के नाम क्रमशः दिये गये हैं। अन्य सभी एतद् विषयक लेखन उनके बाद के हैं। अतः प्रथम बार त्रुटि हो जाने के कारण बाद के सभी ग्रंथों में त्रुटि होती रही।' जिज्ञासु पाठक यह लेख पढ़ें।

क्या मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँच सकता है?

जैनागम के अनुसार सूर्य पृथ्वी से 800 योजन और चन्द्रमा 880 योजन पर है। कर्क सक्रांति के समय जब सूर्य पहली गली में आता है तब चक्रवर्ती नरेश अयोध्या में अपने महल के ऊपर से उस दिन सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन कर लेते हैं। चक्रवर्ती की दृष्टि का विषय 47, 263/720 योजन प्रमाण है। अर्थात उस दिन सूर्योदय के समय सूर्य निषध पर्वत के ऊपर होता है। उस समय की दूरी का यह प्रमाण आता है। इससे स्वयंसिद्ध है कि भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थित सूर्यादि ग्रहों की दूरी का प्रमाण भिन्न-भिन्न ही होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में चन्द्रमा की दूरी का अंतर ढूंढना आवश्यक होगा तभी वैज्ञानिक दूरी या आधुनिक दूरी का अंतर या रहस्य जाना जा सकेगा। पं. जगन्मोहनलालजी के अनुसार मनुष्य का चन्द्रलोक को जाना आगम पद्धति के विरुद्ध नहीं है।

अंजन चोर को आकाशगामिनी विद्या सेठ के मंत्र से प्राप्त होने तथा उसके व सेठ के द्वारा सुमेरू पर्वत के जिनालयों की वन्दना की कथा प्रथमानुयोग में है। विद्याधर और ऋद्धि प्राप्त मुनि भी सुमेरू चैत्यालयों की वन्दना करते हैं। चैत्यालयों की स्थिति सोमनस वन में 63000 योजन और पांडुकवन की 99000 योजन है। जब मनुष्य वहाँ जा सकता है तो 880 योजन चन्द्रलोक तक जाना आगम सम्मत क्यों नहीं है? यह बात दूसरी है कि लोग वहाँ तक गये या नहीं।

सूर्य, चन्द्रमा आदि की संख्या

विज्ञान के अनुसार आकाश में हमारे सूर्य जैसे लाखों और भी सूर्य हैं। लेकिन वे हमसे बहुत दूर होने के कारण इतने बड़े और चमकदार नहीं दिखाई पड़ते। यह कथन भी जैनागम के विपरीत नहीं है। क्योंकि जैनागम जम्बूद्वीप में 2 सूर्य और 2 चन्द्रमा मानता है। जम्बूद्वीप के समान असंख्यात द्वीप समूह एक दूसरे को घेरे हुए स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त है। उनमें सूर्य और चन्द्रमा की संख्या भी दोगुनी होती जाती है।

भूगोल का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। कुछ बिन्दुओं को ही स्पर्श किया गया है। विद्वतजन लेख में यदि कुछ विसंगति देखें तो कृपया लेखक का ध्यान आकर्षित करने की कृपा करें ताकि त्रुटियों को दूर किया जा सके। यह विनम्र निवेदन है।

सन्दर्भ स्थल :

1. विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान, म.प्र. पाठ्य पुस्तक निगम, भोपाल
2. तन्मध्ये मेरूनाभिवृत्तोयोजन शतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः, उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र 3/9
3. तद्विभाजिकः पूर्वापरायताहिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरूक्मिशिखरिणोपर्वतः, वही, 3/12
4. ज्ञान भारती, पृ. 19 - 20
5. विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान, म.प्र. पाठ्य पुस्तक निगम, भोपाल
6. वही
7. द्विर्द्विविष्कम्भाः पूर्व - पूर्व परिसेयिणो बलयाकृतयः, उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र, 3/8
8. नारकानित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः, उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र, 3/3
9. छहढाला
10. रत्नाशर्करा बालुका पंकधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयोधनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः, तत्वार्थ सूत्र, 3/1
11. अजीवकायाधर्माधर्माकाशपुद्गलाः, उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र, 5/1, जीवाश्च तत्वार्थ सूत्र, 5/3
12. जैन शास्त्रों में वैज्ञानिक संकेत, पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री, पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री साधुवाद ग्रन्थ, रींवा, 1989, पृ. 228 - 232
13. विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान, म.प्र. पाठ्य पुस्तक निगम, भोपाल

प्राप्त - 10.5.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

पूर्व वर्षों की भांति वर्ष 1998 के पुरस्कार हेतु विज्ञान की किसी एक विधा यथा गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को समग्र रूप में रेखांकित करने वाली 1994-98 के मध्य प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हिन्दी / अंग्रेजी में लिखित मौलिक कृतियाँ **28.02.1999** तक सादर आमंत्रित की गई थी। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। निर्णय की घोषणा सितम्बर 99 में की जायेगी।

वर्ष 1999 के पुरस्कार हेतु जैनधर्म की किसी भी विधा पर लिखित अद्यतन अप्रकाशित मौलिक एकल कृति 31.12.99 तक आमंत्रित है। प्रविष्टियों हेतु निर्धारित आवेदन पत्र एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

ज्ञानोदय पुरस्कार - 98

श्रीमती शांतादेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 से की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलत: यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र / पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान को रु. 5,001=00 की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

1994-98 की अवधि में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित जैन इतिहास / पुरातत्व विषयक मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तक के आमंत्रण की प्रतिक्रिया में 31.12.98 तक हमें 6 प्रविष्ठियाँ प्राप्त हुईं। इनका मूल्यांकन **प्रो. सी. के. तिवारी,** से.नि. प्राध्यापक - इतिहास, **प्रो. जे.सी. उपाध्याय,** प्राध्यापक - इतिहास एवं **श्री सूरजमल बोबरा** के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया गया। निर्णायक मंडल की अनुशंसा पर **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल,** अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने ज्ञानोदय पुरस्कार - 98 की निम्नवत् घोषणा की है -

डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, पूर्व निदेशक - रामकथा संग्रहालय (उ.प्र. सरकार का संग्रहालय), अयोध्या, निवास - 223 / 10, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ। ***जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य,*** अप्रकाशित पुस्तक।

डॉ. रस्तोगी को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा नवम्बर / दिसम्बर 99 में आयोजित होने वाले समारोह में इस पुरस्कार से सम्मानित किया जायेगा। 1999 के पुरस्कार हेतु 1995-99 की अवधि में प्रकाशित / अप्रकाशित मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तकें आमंत्रित हैं। प्रस्ताव पत्र का प्रारूप एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

वर्ष - 11, अंक - 3, जुलाई 99, 49 - 52

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

णमोकार महामंत्र - साधना के स्वर

एक अध्ययन

■ जयचन्द्र शर्मा *

ब्रह्माण्ड में निनादित नाद तरंगें जब विभिन्न नक्षत्रों से टकराती हैं, तब आहत - नाद उत्पन्न होता है। आहत - नाद के दो भेद हैं - एक अमधुर - नाद एवं द्वितीय सुमधुर - नाद। सुमधुर - नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से धुन (राग) की उत्पत्ति होती है।

समस्त संसार का संगीत सप्त - स्वरों पर आधारित है। स्वर एक मधुर ध्वनि है। यह ध्वनि चेतन एवं अचेतन पदार्थों को प्रभावित करती है। आदिकाल में मानव को सिर्फ तीन ध्वनियों का ज्ञान हुआ। लिंग भेद के अनुसार स्त्री का उदात्त स्वर, पुरुष का अनुदात्त स्वर एवं बालक का स्वरित स्वर प्रकृति की देन है। सामवेद की ऋचाओं का गान तीन ध्वनियों (स्वरों) पर आधारित था। संगीत शास्त्रों में तीन स्वरों के समूह को 'सामिक' जाति कहा है।

गायन एवं वादन क्रिया के लिये तालछंदों का सर्वाधिक महत्व है। ताल को संगीत का प्राण कहा है। भारतीय संगीत में चार, छह, सात एवं आठ मात्राओं की तालों का उपयोग लोक - संगीत एवं सुगम संगीत के साथ किया जाता है। णमोकार महामंत्र की लय चार मात्रा के तालछन्द से संबंधित है जिसे कहरवा ताल कहते हैं। किन्तु महामंत्र का प्रथम पद ॐ सहित आठ मात्रा का है, जिसे श्रावक सोलह मात्राओं की लय में प्रस्तुत करते हैं। संगीतकला दृष्टि से यह दोषपूर्ण नहीं है।

उक्त पद को अन्य तालछन्दों में भी गाया जा सकता है। जैसे, दादरा - ताल को छह मात्राओं के आधार पर गाते हैं तो पद की लय निम्न प्रकार होगी —

ताल दादरा - छह मात्रा, दो भाग, पहली मात्रा सम, चौथी मात्रा खाली

ओ	ऽ	ऽम	ण	मो	ऽ	अ	रि	हं	ता	णं	ऽ
+			0			+			0		

उपर्युक्त ताल दो आवर्तन में 'पद' की लय दर्शाता है।

दो आवर्तन की ताल के साथ बारह मात्राओं का तालछन्द चौताला एवं इकताला का भी प्रयोग किया जा सकता है। चौदह मात्राओं को आधार मान कर गाने पर किसी प्रकार की दिक्कत नहीं है। संगीतलिपि का अवलोकन कीजिये। प्रत्येक पद का अन्तिम अक्षर 'ण' को चार मात्राओं में दर्शाया गया है। चार मात्राओं के स्थान पर दो मात्राओं का उपयोग करें तो पद का तालछन्द दीपचन्दी, आड़ा चारताल, झूमरा आदि तालों के अनुरूप होगा।

इसी पद को दस मात्राओं के तालछन्द में गाते हैं तो कुछ कठिनाई आयेगी। क्योंकि ताल के विभाग दो, तीन, दो - तीन मात्राओं के हैं। पद की मात्राओं में इस ताल का अंश विद्यमान है पर गाने वालों को इसकी लय के अनुरूप गायन हेतु अभ्यास करना

* निदेशक - श्री संगीत भारती, शोध विभाग, बीकानेर - 334 007

आवश्यक है। दस मात्रा का स्वरूप निम्न प्रकार होगा —

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ओ	ऽम	ण	मो	अ	रि	हं	ता	णं	ऽ
+		2		0		3		0	

उपर्युक्त ताल झपताल के स्थान पर शूल ताल के साथ सही बैठता है।

संगीत विद्वानों एवं गायकों के मतानुसार महामंत्र की राग एवं ताल अनेक प्रकार से दर्शाई जा सकती है। वर्तमान में जो धुन प्रचलित है वह सरल, सुगम एवं प्रभावशाली है। फिर भी कोई व्यक्ति या साधक अपने अन्तरतम की लय में लीन होकर अन्य राग एवं तालछंद में गायें तो मंत्र के प्रभाव में किसी प्रकार की कमी आने की सम्भावना नहीं है।

प्रकृति के संगीत में दो प्रकार की लय का सर्वाधिक महत्त्व है। समस्त संसार का संचालन दो प्रकार की लयों पर आधारित है। एक सीधी एवं द्वितीय आडी अर्थात् दायें - बायें की गति। दोनों लयों के ताल छंद चक्कराकार गति से चलते हैं।

महामंत्र के पाँचों पदों में सर्वशक्तिमान शब्द है - 'अरिहंत'। इस शब्द का प्रत्येक अक्षर देव स्वरूप है। सच्चिदानन्द स्वरूप यह शब्द निराकार है वहाँ साकार भी है। सांगीतिक दृष्टि से इस शब्द पर गहराई से चिन्तन एवं मनन करने पर हमें प्रकृति के लय के साथ स्वरों का बोध होता है। चतुस्त्र जाति की लय अरिहन्त शब्द में निम्न प्रकार स्थित है —

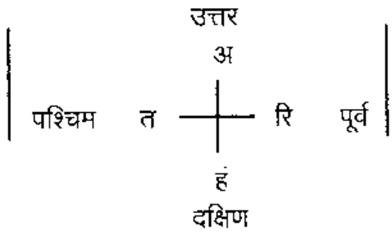

तिस्त्र जाति

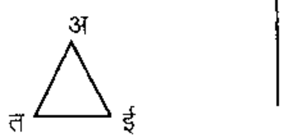

तिस्त्र जाति की लय को जब उत्तरांग एवं पूर्वांग में मिलाने पर षट्कोण बनेगा।

यह आकृति शक्ति की प्रतीक है। महामंत्र की पांचवीं पंक्ति तिस्त्र जाति की है।

पंचकोण की आकृति में 'अरिहंत' शब्द द्वारा पंचतत्त्वों का बोध होता है। जिनकी गति ताल छंदानुसार दस मात्राओं से संबंधित है। मिश्र जाति ताल छंद **'णमो सिद्धाणं'** है।

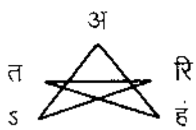

अ = अनाहतवाद, आकाश तत्त्व
रि = रिषभ स्वर, अग्नि तत्त्व
हं = हंस, आत्मा, वायु तत्त्व
ऽ = जल तत्त्व, गति प्रधान
त = तरंगें, तन, पृथ्वी तत्त्व

विविध तालछंदों को दर्शाने का मूल लक्ष्य यह है कि महामंत्र को किसी भी ताल छंदानुसार गाया जा सकता है पर उनका प्रभाव उक्त छंदानुसार होगा। सामान्यतया चतुस्त्र जाति के तालछंदानुसार गाने से मंत्र की मधुर स्वर लहरी प्राणी मात्र को प्रभावित करती

है। चतुस्त्र जाति की लय का संबंध इस पृथ्वी से है जिस पर हम निवास करते हैं। आगे महामंत्र की संगीत लिपि दी गई है —

नवकार मंत्र की संगीत लिपि (ताल कहरवा, चार मात्रा)

प	सा	-सा	नि	सा	-	नि	ध	नि	रे	रे	सा	रे	म	ग	म
ओ	ऽ	ऽम	ण	मो	ऽ	अ	रि	हं	ऽ	ता	ऽ	णं	ऽ	ऽ	ऽ
रे	-	-ग	रे	सा	-	नि	ध	नि	ग	रे	सा	सा	-	-	-
ओ	ऽ	ऽम	ण	मो	ऽ	ऽ	ऽ	सि	ऽ	द्धा	ऽ	णं	ऽ	ऽ	ऽ
ग	-	-म	-ग	ग	-	ग	-	सारे	गम	म	ग	म	-	-	-
ओ		ऽऽम	ण	मो	ऽ	आ	ऽ	यऽ	रिऽ	या	ऽ	णं	ऽ	ऽ	ऽ
रे	-	मग	म	प	-	ध	प	ग	-	रे	सा	सा	-	-	-
ओ	ऽ	ऽम	ण	मो	ऽ	उ	व	ज्झा	ऽ	या	ऽ	णं	ऽ	ऽ	ऽ
सा	सा	-	नि	सा	-	नि	ध	नि	रे	रे	सा	रे	म	ग	म
ण	मो	ऽ	लो	ए	ऽ	स	व्व	सा	ऽ	हू	ऽ	णं	ऽ	ऽ	ऽ
+				+				+				+			

उपर्युक्त पंक्तियों के साथ निम्न पंक्तियाँ भी गाई जाती है —

र	-	ग	रे	सा	-	नि	ध	नि	ग	रे	-	सा	-	-	-
ए	ऽ	सो	ऽ	पं	ऽ	च	णं	मु	ऽ	क्का	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ
ग	-	ग	-	ग	-	ग	ग	सारे	गम	म	ग	म	-	-	-
स	ऽ	व्व	ऽ	पा	ऽ	व	प	णाऽ	ऽऽ	ऽ	स	णो	ऽ	ऽ	ऽ
रे	रे	म	-	प	ध	प	म	ग	-	रे	-	सा	-	-	-
मं	ग	ला	ऽ	णं	ऽ	च	ऽ	स	ऽ	व्वे	ऽ	सी	ऽ	ऽ	ऽ
सा	सा	सा	नि	सा	-	नि	ध	नि	रे	रे	सा	रे	म	ग	म
प	ढ	मं	-	ह	व		ई	मं	ऽ	ग	ऽ	लं	ऽ	ऽ	ऽ
रे	-	गग	रे	सा	-	नि	ध	नि	ग	रे	सा	सा	ऽ	ऽ	ऽ
ओ	ऽ	ऽम	ण	मो	ऽ	अ	रिं	इं	ऽ	ता	ऽ	ण	ऽ	ऽ	ऽ
+				+				+				+			

संगीत लिपि संकेत - मध्य सप्तक के स्वरों पर किसी प्रकार का चिन्ह नहीं है। मन्द सप्तक के स्वरों के नीचे बिन्दु का संकेत है। जैसे नि, ध। कोमल स्वर के नीचे आड़ी लाइन है जैसे नि, ग ध। ताल चिन्ह + इसे 'सम' कहते हैं। अर्द्धचन्द्र के स्वर या शब्द एक मात्रा दर्शाते हैं। जैसे सारे, गम या ऽऽ आदि।

तालछंदों का संबंध षट कमल दल चक्रों से भी है।

ताल छंद एवं षट चक्र

1.	कहरवा	चार मात्रा	चतुस्त्र जाति	मूलाधार चक्र
2.	दादरा	छह मात्रा	तिस्त्र जाति	स्वाधिष्ठान चक्र
3.	झपताल, शूलताल	दस मात्रा	मिश्र जाति	मणिपूरक चक्र
4.	चौताला, इकताला	बारह मात्रा	तिस्त्र जाति	अनाहत चक्र
5.	त्रिताल	सोलह मात्रा	चतुस्त्र जाति	विशुद्ध चक्र

महामंत्र की प्रचलित धुन (राग) चतुस्त्र जाति, मूलाधार चक्र से संबंधित है। पद

की प्रत्येक पंक्ति पर विशुद्ध चक्र का प्रभाव है। आगे महामंत्र में जिन स्वरों का प्रयोग किया गया है, उनके संबंध में प्रकाश डाला जा रहा है।

महामंत्र की स्वर लहरी किसी प्रचलित राग-रागिनियों से संबंधित नहीं है। इसी धुन की लय में 'रघुपति राघव राजा राम' गीत भी गाया जाता है। धुन के स्वरों का अध्ययन करने पर निम्न स्वर संगतियों का स्वरूप प्रकट होता है। धुन में सप्तक के सातों स्वरों के साथ कोमल गंधार एवं निषाद स्वरों का भी प्रमुख स्थान है। स्वर संगतियों के आधार पर इनका विभाजन निम्न प्रकार से होगा -

प्रथम - प ध नि नि, मन्द एवं मध्य स्थान। कोमल धैवल अल्पत्त है।
द्वितीय - सारे ग ग, मध्य स्थान। सा स्वर संवादी है।
तृतीय - म प ध, मध्य स्थान। मध्यम स्वर न्यास स्वर है।

यह धुन (राग) षै ज ग्राम की उत्तर मन्द्र मूर्च्छना से उत्पन्न होती है। मूर्च्छना के श्रुत्यान्तर निम्न प्रकार हैं -

प्राचीन काल्यान्तर युक्त उत्तरमन्द्रा मूर्च्छना

सा 4 रे 2 $\overline{\text{ग ग म}}^{3}$ 4 प 4 घ 2 $\overline{\text{नि नि सां}}^{3}$ = 22

वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर

कम्पन्न संख्या - 240, 270, 288, $303\frac{11}{27}$, 320, 360, 405, 432, $455\frac{1}{9}$, 480,

सा	रे	ग	ग	म	प	ध	नि	नि	सां

	सा	रे	ग	ग	म	प	ध	नि	नि	सां
गुणोत्तर -	$\frac{9}{8}$ X	$\frac{16}{15}$ X	$\frac{256}{243}$ X	$\frac{135}{128}$ X	$\frac{9}{8}$ X	$\frac{9}{8}$ X	$\frac{16}{15}$ X	$\frac{256}{243}$ X	$\frac{135}{128}$ =	2

स्वर संवाद

सेन्ट – 204 + 112 + 90 + 92 + 204 + 112 + 90 + 92 = 1200

स्वर –	सा	रे	ग	ग	म	प	ध	नि	नि
मध्यम भाव –	म	प	X	X	X	सा	रे	ग	ग
पंचम भाव –	प	ध	नि	नि	सा	रे	X	X	X

उपर्युक्त स्वर संवाद, शुत्यान्तर, कम्पन्न संख्या एवं गुणोत्तर आदि के आधार पर महामंत्र की धुन आत्मा एवं परमात्मा से साक्षात्कार कराने की दृष्टि से एक सरल, सुगम एवं आनन्दप्रद मार्ग है।

सन्दर्भ -

1. भरत नाट्य शास्त्र
2. संगीत रत्नाकर
3. संगीत पारिजात
4. संगीत रहस्य
5. ताल प्रकाश
6. त्रिताल दिग्दर्शन (अप्रकाशित)
7. भारतीय श्रुति स्वर एवं राग शास्त्र

प्राप्त – 2.11.98

Vol. - 9, No. - 1, July 99, 53 - 63

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

Exploration of Representation of Numbers In Nemicandrācārya's Works

■ Dipak Jadhav *

Abstract

This paper deals with the exploration of various methods used by Nemicandrācārya of the tenth century to express numbers. Most of them were under pratice in the earlier times of the Jaina school. Their object except metric and non-metric scale notation was terseness. The position of representation of large numbers in his works is much better than that in the European works which are of his later period.

1. Introduction

The pythagorean felt that numbers rule the the universe.[19] What will be the feeling of their representation?

There is no need to define the word 'Number' for modern mathematicians. However, the explanation according to Abhidhānrājendra is that numerical values of souls, non - souls etc. are known from numbers. [23]

Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī was a Jaina saint and a philosopher. He belonged to the Deśiyagaṇa and was disciple of Abhayanandi, Vīranandi and Indrananadi. He was present in the first consecration ceremony (981 A.D.) of the world famous colossus of Gommateśvara at Śravaṇabelogola in Karnataka (India). The colossus is errected by Cāmuṇḍarai, a profound scholar and a brave general, who is well known in the history of southern India.

Nemicandra composed the GJK, GKK, TLS and LDS. We find that numbers are represented by various methods in the first three. These representations lie embedded in gāthās (verses) made for philosophical teachings. These appear highly appreciable and deserve a special study.

In this connection the works of Datta (B.B.)[4], Jain (L.C.),[10/11/12/13] Agrawal (M.B.L.)[1], Shastri (Nemicandra)[23], Jain (Anupam)[8, 13], Jadhav (Dipak)[7] and others are worthseeing. But at present these are only a few works in which one

* Research Scholar - Kundakunda Jñānapīṭha, Indore, Lecturer in Mathematics, J.N. Govt. Model H. S. School, Barwani - 451 551 (M.P.)

could find an exposition of the representational pursuits.

The very object of the present paper is to explore numbers and methods of their representation found in the GJK, GKK and TLS.

2. Observation and Analysis

There were various methods to write numbers in the ancient and medieval India viz. by name of objects, by name of alphabets, with and without denomination, by abbreviation etc. In this way, there also exists the specific move to write them.

अंकानां वामतो गतिः

This statement means that numerals move to left for ascertaining their numerical meaning. It is available from the early vedic and Jaina times. It is still to be decided unanimously why numerals move to left. In this context we find the mythalogical solution through the story of Sundarī Devī's learning from her father Bhagavāna Ṛṣabhadeva in the 'Śiri Bhūvalaya' of Kumudendu of the eighth century.[9, 22]

The number expressed from the smallest denomination to the highest denomination comes under the LWM and the converse comes under the RWM.

It is momentous to note that the RWM was under practice in the Greek alphabetic system (Third century B.C.) of numerals.[3] Jinabhadra Gaṇi (575 A.D.) also used this move.[1] Vīrasena (816 A.D.) has expressed numbers through the LWM, the RWM and the mixed style. Nemicandra has also adopted both the moves and the mixed style.

The classification of methods is as follows.

2.1 Numbers in Metric Scale Notation -

From the very earliest known times ten has formed the basis of numeration in India. But this is extensively used in the whole of Sanskrit literature. [5] Nemicandra also used this scale in his Prakrit works.

LWM अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा (608 KK)
= Eight - fifty seven hundred seven thousand
= 7758

RWM अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिंग च पण्णत्तरि (351 JK)
= Eight crores one lac eight thousand one hundered five - seventy
= 80108175

The composer of the Ṣaṭkhaṇḍāgama (1-2 c. A.D.) also used चउवण्णम

(Four - Fifty), अट्ठोत्तर सदम (Eight and hundred), Koḍī etc.[10]

2.2 Numbers in Non - Metric Scale Notation

In pālī and Prakrit the scale of centesimal is generally used. Around the fifth century B.C., we find successful attempts are made to continue the series of number names based on this scale. The scale of crore is also developed in India before the commencement of the Christian era. A denominational name like koḍākoḍī is found in the earlier Jaina treatise Anuyogadvāra - sūtra.[5] This term is frequently used in the Jaina school and hence in Nemicandra's works also. One Koḍākoḍī stands for 10 millon x 10 million i.e. 10^{14} in the numerical sense.[2] Numbers of quadratic order are written by it.[23] The concerning instances under the RWM from Nemicandra's works are as follows -

ऊणतीससयाइ एक्काणउदी (869 KK)

= One - less - thrity hundred one - ninety

= 2991

एया य कोडिकोडी सत्ताणउदी य सदसहस्साई पण्णं कोडिसहस्सा (117 JK)

= One Koḍākoḍī seven - ninety hundred - thousand fifty koḍī - thousand

= 197500000000000

Hundred thousand is also known as lac.

बारूत्तरसयकोडी तेसीदी तह य होंति – लक्खाणं अट्ठावण्णसहस्स पंचेव (350 JK)

= Twelve - (One) hundred Koḍī three - eighty lacs eight - fifty thousand five

= 1128358005

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव – सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी (336 JK)

= Sixteen hundred four - thirty Koḍī three - eighty lacs seven thousand eight hundred eight - eighty

= 16348307888

2.3 Vinculum Numbers

The subtractive principle is applied to compose the vinculum number. It consists of both the positive and negative digits. By applying the vinculum approach the computational complexities can be drastically cut down to their minimum level. This can be seen in vertical and crosswise, an overview of vedic mathematics etc.[20, 21]

The number 19, 29, 39, 49 etc. offer as Indian instances of the vinculum

number. From vedic times, we find the use of ekānna - viṁśati (one less twenty) for ninetten in the spoken language. In sūtra period the ekānna was changed to ekona and occassionally even the prefix eka was deleted and we have ūna - viṁśati.[5]

Apart from the numbers 19, 29, 39, 49, etc. the vinculum approach is also in evidence in Nemichandra's. works.

बिरहियसय (104 KK) = Two - less - (one) hundred
= 102
= 98

Not only he has used उगुतीस, ऊणतीस, or गुणतीस (one - less - thirty) for twenty nine but he also expressed as णवयवीस (544 KK) i.e. Nine - twenty = 9 + 20 = 29. This approach comes under the vigesimal system of counting. The Maya of central America had practied this system more than 2000 years ago although they were not the first to do so.[6] Even in the present time, it is under practice in the remote tribal region of western Madhya Pradesh of India.

2.4 Numbers Under Operation

To express number under mathematical operation is an interesting phenomenon in Indian mathematics. The operation may be of addition, multiplication, evolution etc. or any combination of more than one of the above. The use of this method is in evidence in the Tiloyapaṇṇattī.[12] Instances from Nemicandra's works are as follows -

पण्णत्तरीहि संजुत्ता एक्कारससय (640 KK)

= Five seventy with elevan hundred

= 1100 + 75 = 1175

दुगुणसोल (568 KK) = Double of sixteen = 2 X 16 = 32

छक्कदि (364 KK) = Six Kriti = $(6)^2$ = 36

पंचमकदिघनसमा (157 JK) = Cube of two squared five times

$= (((((2)^2)^2)^2)^2)^2)^3$

Kriti as technical term has been commonly used by Āryabhaṭa - I (476 A.D.)[18]

बादालं सोलसकदि संगुणिदं दुगुणणवसमब्भत्थं इगितीससुण्णसहियं (20 TLS)

= With one - thirty zeros the product of two - forty, sixteen Kriti and double

of nine

$= 42 \times (16)^2 \times (2 \times 9) \times (10)^{31}$

2.5 Numbers Without Denomination

In this method each of the digits of the number is expressed without its denomination. The digits may be tabulated by grouping also. At that time group has its denomination. Instances from Nemicandra's works are as follows -

LWM **दुगचउरट्ठडसगइगि** **(928 TLS)**

= Two Four Eight Eight Seven One

= 178842

पणतीसं चउणउदी सट्ठी चोदाल **(571 KK)**

= Five - thirty Four - ninety Sixty Four - forty

= 44609435

पण्णासमेकदालं णव छप्पण्णाससुण्णणवसदरी **(313 TLS)**

= Fifty One - forty Nine Six - fifty Zero Nine - seventy

= 7905694150

RWM **तिछणवणवदुग** **(572 KK)**

= Three Six Nine Nine Two

= 36992

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता – सुण्णं पण पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणंग च (354 JK)

= One Eight Four Four Six Seven Four Four Zero Seven Three Seven Zero Nine Five Five One Six One Five

= 18446744073709551615

The true fascination of this method is to save us from denominations which sometimes become hurdles while operating or expressing numbers.

2.6 Number of Repeated Mid - Digits

It is very possible that this method is of the Jaina School. The use of this method has been found in the Dhavalā (816 A.D.). Nemicandra used it in the GJK for the following -

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा (633 JK)

= Seven in the beginning Eight in the end Six nines in the middle
= 89999997

Jain (Khubchandra) remarked that it is three-less-nine crore. [15] Hence we deduce that the 'beginning' stands for unit-place. In other words the LWM is employed for expression. After displaying logical computation, Jaini (J.L.)[16] interpreted it as 89999997 whereas it is 79999998 according to Shastri (N.C. Jain).[23]

2.7 Numbers Together with Common Place Value

In this method two or more numbers are expressed together by intersecting their highest denominational value. Some instances from the GKK are as follows-

णवसगवण्णास (276 KK) = Nine-Seven-fifty = 59, 57

बितिपणसट्ठि (277 KK) = Two-Three-Five-sixty = 62, 63, 65

तियपणछण्णववीस (706 KK) = Three-Five-Six-Nine-twenty = 23, 25, 26, 29

सत्तरेसकग्गसयं (103 KK) = Seventeen-One-hundred = 117, 101

2.8 Alpha-Numbers

Nemicandra has constituted 17 alpha-numbers by Katapayadi system in his works. All these are discussed part by part in the paper *'Nemicandrācāryakṛta Grantho meṁ Akṣara Saṁkhyāo kā Prayoga'* (The use of Alpha-Numbers in Nemaicandrācārya's works). [7a] These have been constituted by applying the first and the second variant of Katapayadi system. The RWM is especially applied for the five ending and the zero ending numbers. The smallest and the largest alpha-number in his works are 'राग' (44JK) i.e. 32 and 'तललीनमधुगविमलंधूमसिलागाविचारेभयमेरूतटहरिखझसा' (158 JK)
i.e. 79228162514264337593543950336 respectively. Both are under the LWM.[7]

Some innovations have been made by him in constituting the aplha numbers. After keen observation of his coding system, one may tempt to deem him as computer scientist.[7a]

2.9 Numbers by Abbriviation

वितिचप (96 JK) = Second, Third, Fourth, Fifth

तिबिपच (180 JK) = Third, Second, Fifth, Fourth

This method has been developed on the basis that one letter of the word represents the whole word.[14]

Datta (B.C.) notes in the gāthā (66TLS) that the number 65536 is denoted

by the abbreviation 'पण्णट्ठी' of its full expression 'पण्णट्ठी पंचसया छत्तीसा', 4294967296 by 'बादाल' from 'बादाल चउणउदी छण्णउदि बिहत्तरीयछण्णउदी' and 18446744073709551616 by the abbreviation 'एकट्ठं' of

> 'एक्कट्ठ च चउ छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो यं उक्कं च' [4]

Both the above devices have been developed for mere terseness. Here it is to be noted that Jaina scholars have for facility of calculation adopted a special unit called Paṇṇaṭṭhi.

2.10 Word Numerals

The earliest instances of a word being used to denote a whole number are found about 2000 B.C. in the Śatapdtha Brāhmaṇa and Taittiriya Brāhamaṇa. The earliest instance of the use of the word numerals with place value is found in the Agni - Pūraṇa. [5]

Jinabhadra Gani (575 A.D.) has used word numerals in Bṛhat - kṣetra - samāsa. Mahāvīra (850 A.D.) has frequently used word numerals. He recognised words according to the Jaina philosophy.[5]

Nemicandra has used the word numerals (125 JK, 342 KK, 383 KK, 384 KK, 472 KK, 473 KK, 841 KK, 850 KK, 21 TLS, 25 TLS etc.) according to the Jaina philosophy. They are as follows.

Kha, Nabha for 0	Naga for 7
Rūpa, Vidhu for 1	Hastin for 8
Naya for 2	Nidhi, Labdhi for 9
Khara for 6	Ravi for 12 etc.

These words have been commonly used with other methods. 'Kha' as technical term for zero has been commonly used by Āryabhaṭa - I (476 A.D.).[18]

2.11 Numbers of Composite Style

Some numbers have been expressed in the GJK, GKK and TLS by the composition of different methods.

The numbers in the composition of 'Word Numerals' and 'Without Denomination' are as follows -

LWM खदुणवएक्कं (499 KK) = Kha Two Nine One = 1920

बार ख छक्कं (125 JK) - Twelve Kha Six = 6012

RWM विधुणिधिणगणवरविणभणिधिणयण – बलद्धिणिधिखराहत्थीइगितीससुण्णसहिया (21 TLS)

= Vidhu Nidhi Naga Nine Ravi Nabha Nidhi Naya Nine Labdhi Nidhi

Khara Hastin with One - thirty zeros

= $19791209299968 \times (10)^{31}$

इगिसगणवणवदुगणभणभट्ठचउपणचउक्कपणसोलं सोलसछत्तीसजुदं हरहिदचउरो (25 TLS)

= One Seven Nine Nine Two Nabha Nabha Eight Four Five Four Five Sixteen with Sixteen times Six - thirty and 4/11

= $17992008454516363636363636363636363636363636\frac{4}{11}$

The compsition of 'Word Numeral' and 'Under Operation' is as follows -

रूवहियडवीससया (841 KK) = Rūpa with Eight - twenty hundred

= 2800 + 1 = 2801

The composition of 'Word Numeral' and 'Together with common place value' is as in ;

सत्तरसेक्कारखचदुसाहियसयं (276 KK)

= Seventeen - Elevan - kha - four - (with) - hundred

= 117, 111, 100, 104

Number, in which mixed style of move has been adopted, is

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सा (123 JK)

= Three hundred six - thirty Six - sixty thousand

= 66336

The following is of great notice.

अडदालं बाणउदी सदाण छादाल चत्तधिय (568 KK)

= Eight - forty two - ninenty hundred six - forty plus forty

= 9248 and 4640

Hundred as denomination is common here. 9248 is under the LWM whereas 4640 is under the RWM

The word 'Pṛthaktva' which denotes a number lying from three to nine, is also used in his works.

3. Discussion -

According to Jain (L.C.), the Jaina school appears to have originated soon after Vardhamāna Mahāvīra who was either contemporary to or predecessor of Pythagoras (532 B.C.). It is formed mainly of some Nigganta ascetics who

left a few records of their knowledge out of which the Ṣaṭkhaṇḍagam and Mahābandha texts composed, probably during the first two centuries of the Christian era. These are a great tresure of mathematical knowledge. The Dhavalā (816 A.D.) series of texts, a life work of Vīrasena, professedly, a commentary on the Ṣaṭkhaṇḍāgama, has been regarded a work of first rate importance for the historians of Indian mathematics. It was this source from which Nemicandra prepared 'Gommaṭsāra'. He composed 'TLS' as well which appears to have been based on an earlier work, the Tiloyapaṇṇattī (5c.A.D.).[12] Hence our inference is that the most of the methods used by Nemicandra to express numbers would be under practice in the earlier times of the Jaina school.

According to Singh (A.N.) if we examine a religious or philosophical work written in the period 400 A.D. to 800 A.D., its mathematical content will belong to O A.D. to 400 A.D.[13] Of course, Nemicandra's works are of the ending decades of the tenth century but an episode of the Jaina school and of religious importance as well as philosophical importance. Therefore our deduction is that these tracing of the methods, used by him to express numbers, will appear important to the historians of Indian mathematics.

Datta has remarked that the way of expressing numbers by contrary moves without clearly indicating which move should be adopted in a particular instance introduces a good deal of uncertainty in the arithmetical notation. [4] In this regard we unbiasedly think when one is well versed to use some devices which are under practice from centuries, one does not need to indicate before their use.

The object of the almost all methods except the first two is the terseness. This terseness has been used as device in composing gāthās. It is true to some extent that sometimes the terseness makes difference to take interpretation from gāthās. The keen observation of the whole of the Hindu as well as the Jaina Mathematics features that the terseness was the fashion of time and it was a methodological device to write texts. It was used in order to faciliate the recording of devices, derivations, conclusions etc. In the eyes of learned the more compact and brief compositions were of the great values. Especially in scientific matters, conciseness of composition was highly prized in India.

The method which is used by Nemicandra to express large numbers is also used for small numbers. This observation is of great notice.

The position of represenatation of large numbers in his works is much better than that in the European works which are of his later period. Smith (David Eugene) notes very well about writing large numbers in the European

as well as in the Spanish works. Fibonacci (1202 A.D.) used the arc as in $\overline{678}\,\overline{935}\,\overline{784}\,\overline{105}\,296$. Recorde (c. 1542) used a bar (virgula) for separating the figures as in 230/864/089/015/340. Greenwood (1729 A.D.) represented the number, as in 1, 234, 567.[25]

4. Concluding Remark

Through this paper we have come to remark that Nemicandra has desplayed his authority of handling numbers by various methods throughout his works. About expression of numbers, his lore is as deep as ocean. His works should be important to the historians of Indian Mathematics, as they supply informations about various methods to express numbers.

Abbreviations :

GJK Gommaṭasāra (Jīvakāṇḍa).
GKK Gommaṭsāra (Karmakāṇḍa).
TLS Triloksāra
LDS Labdhisāra (Kṣapaṇāsāra Garbhita)
JK Jīvakāṇḍa
KK Karmakāṇḍ
LWM Leftward Move
RWM Rightward Move

N.B.: The serial number of gāthā is written throughout the paper before JK, KK or TLS into the box.

Acknowledgement

The author is highly thankful to Dr. Anupam Jain, Asst. Prof., Department of Mathematics, Govt. Autonomous Holkar Science College, Indore for guidance and suggestions on improvement of this paper. Obligation is also due to Kundakunda Jñānapīṭha, Indore.

References -

1. Agrawal, M.B.L., *Gaṇita Aevaṁ Jyotiṣa ke Vikāsa meṁ Jaināćāryo kā Yogadān*, (Doctoral Thesis), Agra University, 1972.
2. Āryikā Jñānamatī, *Loka Vijñāna*. Proceedings of International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology, Hastinapur, 1991, p. 141.
3. Bag, A.K., *Mathematics in Ancient and Medieval India*. CORS-16, Chaukhamba, Varanasi, 1979, p. 63.
4. Datta, B.B., Mathematics of Nemicandra, The Jaina Antiquary, 1(2), 1935, p. 25-29.
5. Datta, B.B. and Singh, A.N., *History of Hindu Mathematics (A Source Book). Part-1, MLBD, Lahore. 1935. Reprinted by Asia Publishing House, Bombay. 1962. pp 9-16. 53-62.*
6. *Gupta, R.C., Who Invented the Zero?*. Gaṇita Bhāratī, Vol.-17, Nos. 1-4, 1995, p. 53.
See also Cajori, Florian, *A History of Mathematics*. The Macmillan Company, New York, 1958, pp 69-70.

7a. Jadhav, Dipak, *Nemicandrācāryakṛta Grantho Meṃ Akṣara Saṁkhyo kā Prayoga*. Arhat Vacana, **10** (2), April 98, p. 47 - 59.

7b. Jadhav, Dipak, *Bārelāo kī Bhāṣā*. Rasaranga, Dainik Bhaskar, 11.10.98., p. 4.

8. Jain, Anupam, *Ganita ke Vikās meṁ Jaināčāryo kā Yogadān*. Doctoral Thesis, Meerut University, 1990.

9. Jain, H.K., *Siri Bhuvalaya kī Prāpti*. Arhat Vacana, **9** (3), July 1997, p. 69 - 72.

10. Jain, L.C., *Āgamoṁ meṁ Ganitiya Sāmagri tathā Usakā Mūlyānkan*. 6 (9), Tulsī Prajñā, Dec. 1980, pp. 35 - 69.

11. Jain, L.C., *Exact Science from Jaina Sources, Basic Mathjematics*. Vol - I, Pub. - RPBS, Jaipur and SRBISR, New Delhi, 1982.

12. Jain, L.C., *On the Jaina School of Mathematics*, Chhotelal Smriti Grantha, Calcutta, 1967, pp 265 - 292.

13. Jain, L.C. and Jain, Anupam, *Philosopher Mathematicians*, Digambara Jaina Institute of Cosmographic Research, Hastinapur, Meerut, 1985.

14. Jain, Pt. Khubachandra, *GJK*. Srimad Rajendra Āshram, Agas, 1985, p. 65.

15. Jain, Pt. Khubachandra, *GKK*. Srimad Rajendra Āshram, Agas, 1986.

16. Jaini, J.L., *GJK*. TCJPH, Ajitashram, Lucknow, 1927.

17. Jaini, J.L., *GKK. Part - I*. TCJPH, Ajitashram, Lucknow, 1927.

18. Jha, Parmeshwar, *Āryabhata - I and His Contributions to Mathematics. Bihar Research Society, patna, 1988, pp. 78 - 79.*

19. *Kapur, J.N., The Spirit of mathematics*. Arya Book Depot, New Delhi, 1991, p. 5.

20. Nicholas, A.P., Pickles, J. and Williams, K.R., *Vertically and Crosswise*, VMRG, London.

21. Puri, Narinder, *An Over View of Vedic Mathematics*. SSS, Roorkee, 1988.

22. *Siri Bhūvalya*, Hindi Translation, Siri Bhūvalya Prakasna Samiti, JMM, Dharampura, Delhi, VNS 2484, p. 26.

23. Shastri, N.C. Jain, *Bhārtiya Sanskṛti ke Vikāsa meṁ Jaina Vangamaya kā Avadāna, Sagar, 1983, p. 355.*

24. *Shastri, Pt. Manoharlalji, TLS*. Sri Manikchand Digambar Jaina Granthamālā Samiti, Bombay, 1918.

25. Smith, D.E., *History of Mathematics, Vol. 02, Dover Pub., New York, 1958, pp. 86 - 87.*

Received - 12.11.98.

ARHAT VACANA
Kundakunda Jnanapitha, Indore

What Dreams Talk About

■ A. P. Jain *

Our memories are made up of millions of fragments of information that have been transmitted down, retained through the generatoions. It is admitted in the Jain Canonical literature. This is called consciuosness. Then there are specific experiences that make up the individual consciousness, Makes senses so far? Our dreams act as conduits between thses two states - churning up sanappy flicks ; shot, edited and screened in the interative studies of our REM sleep. And no, the studio bosses do not really care about entertaining you. So what ever kicks, thrills, pleasures and sears you derived out of your dreams are purely incidental. Why then, do they pop up, unammonced only to turn our microcosm upside down. ?

Some one might have an answer in 'Keval Jñāna Praśna Cūdāmaṇi' (केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि) edited by Dr. Nemichand Jain, Jyotisācārya. The researches and expertise in this field revealed the dream analysis sometimes even 'Ordaining Dreams' to help solve problems.

One can wonder and intend to know the process ; First one has to go (or is led) into meditation. as it is the meditative state that connects the subject to his true inner self his right brain. Then a dream petition is placed before his pure self. This is followed by an auto suggesion to make the dream happen. The dream, then shows up when ever the subject falls asleep next. It is not that one has to be always induced into dreaming. We dream regularly, every night. One can. question that what about the people and places that appear in our dreams? Are they for real? The researches on the above Jain text revealed that the people who appear in our dreams are actually our own erection. They represents traits that are there in his or those that might cause you is stumble.

Dream symbols are very important, even small details, but which is remembered has its own significance. The mother of Tīrthankaras would see some significant symbols (16) during the pregnancy, it is well known to every body.

Some typical symbols appear universally a house represent the self. The ground floor Physical self, first floor mental being, the terrace reprents the spiritual self. Looking out of the window or the parapet is the symbolic of the coming future.

Snakes are not always an ominious symbol. In fact its sighing can mean many things. On one hand it stands for healing, state of kundalini stands for violence. It's bites often reprents energetic love making.

The above mentioned Jain text 'केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि' have a potential literature on dreams. This book can solve or unfold the question (multifarious) and can reveal the resplendent world of dreams.

* N - 14, Chetakpuri, Gwalior - 474 009

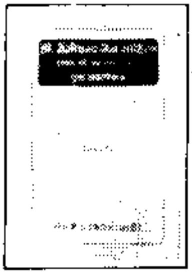

डॉ. नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचय

डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य (पचास वर्ष : सन् 1948 - 98) एक अवलोकन, सम्पादक - प्रेमचन्द जैन, हीरा भैया प्रकाशन, 65 पत्रकार कालोनी, कनाडिया रोड, इन्दौर, प्रथम संस्करण, अक्टूबर 98, मूल्य - रु. 100 = 00। I.S.B.N. 81-85760-55-2.

डा. नेमीचन्द जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व, संपादक - प्रेमचन्द जैन, हीरा भैया प्रकाशन, 65 पत्रकार कालोनी, कनाड़िया रोड़, इन्दौर, प्रथम संस्करण, मई 99, मूल्य - रु. 100 = 00। I.S.B.N. 81-85760-57-8.

समीक्षक - डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर।

वर्ष 1980 में जब मैंने जैन विद्याओं के अध्ययन के क्षेत्र में कदम रखा था तब ही स्तरीय पत्र - पत्रिकाओं की खोज में तीर्थंकर से साक्षात्कार हुआ। मैं नहीं जानता था कि डॉ. नेमीचन्द जैन कौन हैं? किन्तु तीर्थंकर के अध्ययन से यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि इस पत्रिका का सम्पादक बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी एक कुशल भाषाविद् है। तीर्थंकर जितनी साहित्यिक है उतनी ही सामाजिक। भाषा की दृष्टि से तो वह इतनी सम्पन्न है कि यदि किसी शब्द का प्रयोग एवं उसका शुद्ध पाठ देखना है तो तीर्थंकर को देखा जा सकता है। वर्षों तक मैं तीर्थंकर का नियमित पाठक रहा एवं आज भी हूँ। किन्तु जैन जैविकी तथा जैन भौतिकी बिशेषांक एवं जैन भूगोल अंक आदि पढ़ने के बाद तो मैं चमत्कृत हो उठा। ये अंक भाषाविद् द्वारा सम्पादित होते हुए भी हर पग पर एक कुशल वैज्ञानिक के कृतित्व प्रतीत होते हैं। तीर्थंकर के अब तक प्रकाशित 40 - 50 विशेषांक अपने - अपने विषय के सन्दर्भ ग्रन्थ हैं। ऐसी पत्रिका के सम्पादक डॉ. नेमीचन्द जैन स्वभाव से सरल, विचारों में क्रांतिकारी तथा स्पष्टवादी, धुन के पक्के एवं समर्पित साधक हैं। तीर्थंकर उनके जीवन का मिशन है किन्तु विगत लगभग 10 वर्षों से आपने अपने मिशन को एक नया मोड देते हुए शाकाहार के लिये स्वयं को समर्पित किया है। शाकाहार क्रान्ति, शाकाहार के बारे में आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रमाणिक एवं सर्वाधिक सूचना सम्पन्न पत्रिका है। आरम्भ में द्विमासिक रूप से प्रारम्भ हुई यह पत्रिका सम्प्रति लगभग 10 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रही है। शाकाहार एक समग्र जीवन पद्धति है। जिस पर किये जाने वाला अनवरत चिन्तन डॉ. जैन के इस अवधि में प्रकाशित तीर्थंकर की सम्पादकीय टिप्पणियों में भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है। 1994 में तीर्थंकर में प्रकाशित अहिंसा के अर्थशास्त्र पर लिखी लेखमालायें इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

श्रेष्ठ पत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन अत्यन्त श्रमसाध्य, कष्टसाध्य एवं पीड़ादायक कार्य है। लेकिन इसके बावजूद भी डॉ. जैन ने लगभग 100 छोटी - बड़ी पुस्तकें जैन समाज एवं हिन्दी साहित्य को प्रदान की। पत्रिकाओं के संपादन की एक लम्बी यात्रा में वीणा, समय तथा अंग्रेजी तीर्थंकर भी उनके पड़ाव रहे। देश के विभिन्न अंचलों में विविध साहित्यिक एवं शाकाहार प्रवृत्तियों के लिये अनेकों पुरस्कार से सम्मानित डॉ. नेमीचन्द जैन का जन्म 3 दिसम्बर 1927 को मध्यप्रदेश के बड़नगर कस्बे में हुआ था। 1952 में हिन्दी तथा 1953 मे अर्थशास्त्र विषय से एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही आपने 'भीली के भाषा शास्त्रीय अध्ययन' पर विक्रम विश्वविद्यालय से Ph.D. की उपाधि प्राप्त की। म. प्र. शासन की महाविद्यालयीन शिक्षा सेवा में रहते हुए इन्दौर, गुना, बड़वानी, नीमच, जावरा,

देवास में हिन्दी विषय के प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। यदि हम उनके 50 वर्षों के साहित्यिक अवदान पर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि जीवन के प्रथम 20 वर्ष अध्ययन, तदुपरान्त 20 वर्ष हिन्दी साहित्य एवं संस्कृति की सेवा, अगले 20 वर्ष जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति और समाज को समर्पित किये, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि षष्ठिपूर्ति के उपरान्त उन्होंने अपने जीवन को पूर्णत: शाकाहार एवं आचार शुद्धि के अभियान को समर्पित कर दिया है। ऐसे विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, महान साहित्यकार की सेवाओं का समीचीन मूल्यांकन नहीं हो सका है।

किसी भी व्यक्ति को वही व्यक्ति ठीक से समझ सकता है जो अधिकाधिक समय उसके सम्पर्क में रहे। उनकी साहित्यिक, सामाजिक यात्रा में अहर्निश सहभागी होने के कारण श्री प्रेमचन्दजी को उन्हें बहुत नजदीक से देखने का अवसर मिला। श्री प्रेमचन्द जैन के सम्पादकत्व में प्रकाशित 2 प्रतियाँ हमारे सम्मुख हैं। **डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य - एक अवलोकन** के अन्तर्गत 18 बिन्दुओं के माध्यम से अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ उनके द्वारा सृजित पुस्तकों, संपादकीय आलेखों, विशेषांक, पत्राचार पाठ्यक्रम हेतु सृजित इकाइयों का विवेचन किया गया है। बातचीत, कविता, कहानी, समीक्षाएँ, यात्रा विवरणों, पत्रों एवं दैनिक डायरी के शीर्षकों के अन्तर्गत उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श करने का आपने सफल प्रयास किया है। एक भेंट में श्री प्रेमचन्द जैन ने बताया कि इस 400 पृष्ठीय पुस्तक में उनके द्वारा सृजित विशाल सम्पदा के 1/5 भाग का ही अवलोकन हो पाया है।

द्वितीय कृति, **डॉ. नेमीचन्द जैन - व्यक्तित्व और कृतित्व** जैन समाज एवं हिन्दी साहित्य के लिये एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुत: यह कृति अलग-अलग दृष्टियों से डॉ. नेमीचन्दजी को जानने और समझने के लिये अत्यन्त प्रासंगिक है। इसमें डॉ. नेमीचन्दजी पर जिन 34 लेखकों के आलेख प्रकाशित हुए हैं उनमें उनके सगे संबंधी तो हैं ही, सर्वश्री सुरेश सरल, कन्हैयालाल सेठिया, डॉ. जयकुमार जलज, डॉ. सरोजकुमार, डॉ. अनिलकुमार जैन, डॉ. जे. के. संघवी जैसे प्रतिष्ठित हस्ताक्षर भी सम्मिलित हैं। पुस्तक के उत्तरार्द्ध में डॉ. नेमीचन्द जैन कृतित्व के बहुचर्चित अंशों को समाहित कर श्री प्रेमचन्द जैन ने अपने सम्पादकीय कौशल का सक्षम प्रयोग किया है।

मुझे विश्वास है कि जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य ही नहीं, अपितु पत्रकारिता और हिन्दी भाषा के प्रति अभिरूचि रखने वाला प्रत्येक पाठक इन दो कृतियों को अवश्य ही पढ़ेगा। पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालय हेतु अपरिहार्य है। 400 पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य मात्र 100.00 रुपये रखा जाना अत्यन्त उचित है। मुद्रण भी आकर्षक एवं निर्दोष है।

'हम अपने रोजमर्रा की जिन्दगी से करूणा को जिस तरह विदा कर रहे हैं और बर्बरता की अगवानी कर रहे हैं उसे देखते तय है कि हिंसा का दौर और तेज होगा। कुछ राजनीतिज्ञों का इशारा है कि यदि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में हमनें अहिंसा की जगह हिंसा को अपनाया, या उसे बढ़ावा दिया तो इसके बड़े बदकिस्मत नतीजे होंगे। प्रजातन्त्र की स्थापना या उसे शक्तिशाली बनाने के इन महत्वपूर्ण क्षणों में यदि हमने हिंसा-अहिंसा के विवेक का ध्यान नहीं रखा तो हमारे हाथ से मानवता की वह पूँजी खिसक जायेगी जिसे हमनें शताब्दियों की तपस्या और साधना के बाद अर्जित किया है।'

डॉ. नेमीचन्द जैन

सम्पादकीय - शाकाहार क्रान्ति, मई - जून 89

प्रतिष्ठा विधि का एक आदर्श ग्रन्थ

प्रतिष्ठा प्रदीप – श्री दिगम्बर जैन प्रतिष्ठा विधि विधान।
लेखक एवं सम्पादक - संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, प्रकाशक - वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, गोम्मटगिरि, इन्दौर एवं श्रमण संस्कृति विद्यावर्द्धन ट्रस्ट, इन्दौर। द्वितीय संस्करण, 1998, पृ. 24 + 234 + परिशिष्ट + आर्ट पेपर पर अनेक चित्र, स्केच आदि। मूल्य - रु. 150 = 00। समीक्षक - डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर।

'समाज में सामान्य रूप में दो प्रकार के क्रियाकाण्ड प्रचलित हैं। किन्तु पंचकल्याणक द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमा की पूज्यता में कोई विरोध नहीं है। एक क्रियाकाण्ड में पंचामृताभिषेक, चतुर्निकाय के देवी - देवताओं की पूजा व उनकी मूर्ति स्थापना, हरित पुष्पफलों से पूजा और महिलाओं द्वारा प्रतिमाभिषेक ये चार भी हैं। दूसरे क्रियाकाण्ड में उक्त चारों क्रियायें नहीं होती। प्रथम का विधि - विधान आशाधर प्रतिष्ठासारोद्धार व नेमिचन्द्र प्रतिष्ठातिलक द्वारा तथा द्वितीय का जयसेन (वसुविन्दु) आचार्य के प्रतिष्ठा पाठ द्वारा किया जाता है। सभी प्रतिष्ठा ग्रन्थों में बिम्ब प्रतिष्ठा संबंधी मुख्य - मुख्य मन्त्र समान हैं। अंकन्यास, तिलकदान, अधिवासना, स्वस्त्ययन, श्रीमुखोद्घाटन, नेत्रोन्मीलन, प्राणप्रतिष्ठा, सूरिमन्त्र ये बिंबप्रतिष्ठा के प्रमुख मन्त्र संस्कार हैं, जो सभी प्रतिष्ठा ग्रन्थों में समान हैं और महत्व भी इन्हीं का ही है। इनके सिवाय बाह्य क्रियाकाण्ड भिन्न हैं। यथा यागमंडल में एक विधि द्वारा पंचपरमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकर आदि की पूजा है, तो दूसरी विधि में चतुर्निकाय देवी - देवताओं की पूजा है। जलयात्रा आदि में भी पूजा संबंधी विभिन्नता है। अत: जहाँ जैसी मान्यता हो, उनमें हस्तक्षेप न करते हुए सामाजिक शांति और धार्मिक सहिष्णुता बनाये रखना चाहिये। 'विद्यते न हि कश्चिदुपाय: सर्वलोक परितोषकरो य:।' की नीति का स्मरण कर हृदय में उपगूहन और वात्सल्य को स्थान देना चाहिये।'

संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री ने समीक्ष्य कृति की प्रस्तावना में उक्त कथन कर समाज में समन्वय एवं सद्भावना के विकास का श्लाघनीय प्रयास किया है। विद्यावयोवृद्ध पंडितजी ने इस पुस्तक में प्राचीन प्रतिष्ठा पाठों का गहन अध्ययन कर आगम सम्मत प्रतिष्ठा विधि का सांगोपांग विवेचन किया है। इसी कारण वे पंथ व्यामोह से ऊपर उठकर जहाँ प्रतिष्ठा के आवश्यक अंग हवन (यज्ञ) का समर्थन करते हैं वहीं ब्राह्याडम्बरों, अनावश्क क्रियाकाण्डों एवं प्रदर्शन का भी विरोध करते हैं। आपने पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं की प्रामाणिकता एवं पवित्रता बनाये रखने का आग्रह किया है।

प्रतिष्ठा से सम्बद्ध सभी पक्षों (तथ्यों) - प्रतिमा निर्माण, मूर्ति परीक्षण, मन्दिर वास्तु, वेदिका निर्माण, प्रतिष्ठा मुहूर्त, प्रतिष्ठा मंडप, यज्ञ शाला आदि सम्बन्धी समस्त जानकारी देने के साथ ही विभिन्न पूजाओं, स्तोत्रों, मंत्रों का संकलन सिलसिलेवार ढंग से किया गया है। इस कारण यह ग्रन्थ सभी प्रतिष्ठाचार्यों विशेषत: नवीन प्रतिष्ठाचार्यों के लिये आदर्श है। विषय की सम्पूर्णता एवं सुसंगतता के कारण ही कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्थान ने इसे अपने 'प्रतिष्ठा रत्न' पाठ्यक्रम में पाठ्य पुस्तक रूप में स्वीकृत किया है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के निदेशक मण्डल के वरिष्ठतम सदस्य पं. नाथूलालजी शास्त्री की समीक्ष्य कृति के प्रकाशन से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के गौरव में भी अभिवृद्धि हुई है। समाज इस अमूल्य कृति को प्रदान करने हेतु पं. जी का सदैव ऋणी रहेगा।

श्रेष्ठ प्रकाशन हेतु वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति एवं श्रमण संस्कृति विद्या वर्द्धन ट्रस्ट भी बधाई का पात्र है। मुद्रण आकर्षक, निर्दोष एवं मूल्य उचित है।

पांडुलिपियों के संरक्षण हेतु समर्पित संस्था की नवीन प्रस्तुति

अनेकान्त दर्पण - अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान की शोध वार्षिकी। प्रवेशांक - 1999, सम्पादक - डॉ. रतनचन्द जैन - भोपाल एवं प्राचार्य निहालचन्द जैन, बीना। प्रकाशक - श्री अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, छोटी बजरिया, बीना - 470 113 जि. सागर। समीक्षक - डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर।

20 फरवरी 1992 को सरल ग्रन्थालय के रूप में जिस संस्था की स्थापना हुई थी वह इसके संस्थापक एवं समर्पित साधक **ब्र. संदीप जैन 'सरल'** के अहर्निश श्रम से आज एक शोध संस्थान का रूप ले चुका है। मार्च 1995 से गाँव गाँव जाकर प्राचीन जैन पांडुलिपियों की खोज का उनका अभियान अब आन्दोलन बन चुका है। भाई संदीपजी ने अपनी टीम के साथ कार्य करते हुए 4 वर्षों में 200 ग्रामों का सर्वेक्षण कर लगभग 3500 पांडुलिपियों का संकलन किया है। संग्रहीत पांडुलिपियों, उनके वैशिष्ट्य आदि की जानकारी देने, पांडुलिपियों के संकलन, संरक्षण के बारे में सम्यक जनचेतना जाग्रत करने हेतु संस्था ने अपनी वार्षिकी के प्रकाशन का निर्णय किया, जिसकी सफल परिणति है - **अनेकान्त दर्पण।**

विद्वान सम्पादक द्वय ने इस प्रवेशांक में संस्था एवं उसके कार्यक्षेत्र से सम्बद्ध महत्वपूर्ण साम्रगी का संकलन किया है, जो पठनीय एवं संकलनीय है। मुझे इस अंक के निम्नांकित आलेखों ने विशेष प्रभावित किया -

1. गंधहस्ति महाभाष्य के कुछ शोध बिन्दु - प्राचार्य कुन्दनलाल जैन, दिल्ली
2. पांडुलिपियों की सम्पादन विधि - डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर', नागपुर
3. कतिपय विशिष्ट अप्रकाशित ग्रन्थ - ब्र. संदीप 'सरल', बीना
4. जैन पांडुलिपियों की वर्तमान दशा, दिशा व समाधान - डॉ. कस्तूरचन्द 'सुमन', श्रीमहावीरजी

ब्र. संदीपजी का 'शास्त्रोद्धार शास्त्र सुरक्षा अभियान - एक सर्वेक्षण' शीर्षक लेख भी प्रेरणादायक है।

हमें विश्वास है कि अनेकान्त दर्पण शीघ्र ही अपनी आवृत्ति बढ़ाकर जिनवाणी की सेवा में और अधिक योगदान देगी।

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

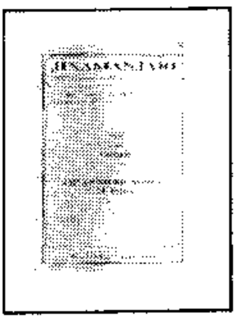

JINAMANJARI
Editor - S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Biannual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada - U.S.A.**
Contact - S.A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
Mississauga, Ontario,
CANADA L4Z 2W5

जैन पांडुलिपियों का सूचीकरण

किसी राष्ट्र के स्वर्णिम अतीत की स्मृतियों का संरक्षण एवं उन्हें यथावत आगामी पीढ़ी को हस्तांतरित करना वर्तमान पीढ़ी का दायित्व है। वर्तमान में समृद्धि के चरम पर पहुँचे अनेक राष्ट्रों को यह पीड़ा अनेकशः होती है कि उनके पास समृद्ध अतीत के नाम पर कुछ शेष नहीं है। हम भारत के निवासियों को इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि वर्तमान में हम भले ही विकासशील हों किन्तु अतीत में हम समृद्धि के चरम बिन्दु पर पहुँच चुके थे। साहित्य, संगीत, कला एवं विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय मनीषियों का अवदान विश्व में प्रसिद्ध है और यह विपुल ज्ञान प्राचीन पांडुलिपियों के रूप में अनेक झंझावातों को झेलता हुआ हमें, अल्प मात्रा में ही सही, आज भी उपलब्ध है। श्रमण संस्कृति की जैन परम्परा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, बल्कि यदि यह कहा जाये कि श्रमण संस्कृति को अलग करके भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन असंभव है तो अतिशयोक्ति न होगी। जैनाचार्यों ने दर्शन, अध्यात्म, साहित्य, व्याकरण, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि अनेकानेक विषयों पर आत्मकल्याण की भावना से प्रेरित होकर विपुल मात्रा में साहित्य का सृजन किया है। 20 वीं शताब्दी की मुद्रण क्रांति के बावजूद आज भी अनेकों पांडुलिपियाँ जैन ग्रन्थ भंडारों में तथा देश-विदेश के प्रसिद्ध पांडुलिपि ग्रंथागारों में सुरक्षित हैं। विगत् शताब्दियों में साम्प्रदायिक विद्वेष एवं जातीय उन्माद के कारण जलाई गई जैन ग्रंथों की होलियों में लाखों बहुमूल्य पांडुलिपियाँ भस्म हो गई, किन्तु आज भी शेष बचे ग्रंथ यत्र-तत्र विकीर्ण व्यक्तिगत संग्रहों, मंदिरों, सरस्वती भंडारों में दीमक एवं चूहों का आहार बनने के साथ ही सम्यक् संरक्षण के अभाव में सीलन आदि से भी प्राकृतिक रूप से नष्ट हो रहे हैं। महान जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत जिनवाणी की इन अमूल्य निधियों को हम एक बार नष्ट होने के बाद दोबारा सर्वस्व समर्पित करके भी नहीं प्राप्त कर सकते। आज भी हमें अनेक आचार्यों की कृतियों के उल्लेख मात्र ही मिलते हैं। उन कृतियों को हम नहीं पा सकते हैं। पता नहीं किस भंडार में कौन सी निधि छिपी मिल जाय, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस हेतु हमें योजनाबद्ध ढंग से दीर्घकालीन प्रयास करने होंगे।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर भी इस स्थिति का अनुभव कर रहा था एवं देश के अनेक विद्वानों से इस बाबद हमनें सम्पर्क भी किया। अक्टूबर-नवम्बर 98 में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अध्यक्ष **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल** एवं सचिव **डॉ अनुपम जैन** से विस्तृत चर्चा के बाद 1 जनवरी 99 से **प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण** का कार्य प्रारम्भ किया गया है। इससे किसी भी अप्रकाशित पांडुलिपि के प्राप्त होने पर उसके पूर्व प्रकाशित होने के बारे में निश्चित रूप से निर्णय दिया जा सकेगा, किन्तु देश के विभिन्न ग्रामों, कस्बों, नगरों में स्थित जिनालयों, सरस्वती भवनों एवं व्यक्तिगत संग्रहों में स्थित लक्षाधिक प्राचीन जैन पांडुलिपियों का सूचीकरण, संरक्षण एवं संकलन वर्तमान पीढी का दायित्व है। यद्यपि यह दायित्व समाज की शीर्ष संस्थाओं का है तथापि इस दिशा में व्याप्त उदासीनता को देखकर श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर ने अपने सीमित साधनों के बावजूद यह गुरुतर दायित्व इस आशा एवं अपेक्षा के साथ ग्रहण किया है कि समाज का सक्रिय एवं व्यापक सहयोग हमें प्राप्त होगा। प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण के क्षेत्र में गत 5 माह में सम्पन्न कार्य की प्रगति, प्रबन्ध कौशल, सुयोग्य, क्रियाशील, दूर दृष्टि सम्पन्न अकादमिक नेतृत्व, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता एवं अकादमिक अभिरूचि सम्पन्न श्रेष्ठि काका साहब श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल की उदात्त भावनाओं को दृष्टिगत कर इस महत्वपूर्ण परियोजना के क्रियान्वयन का दायित्व कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर को प्रदान किया गया है। श्रुत पंचमी, 18.6.99 को औपचारिक रूप से इस परियोजना का शुभारम्भ भी किया जा चुका है।परियोजना को प्रख्यात गणित इतिहासज्ञ एवं अर्हत् वचन के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन, सचिव-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ अपना मार्ग दर्शन प्रदान करेंगे। आवश्यक तकनीशियनों एवं उपकरणों की व्यवस्था भी कर दी गई है।

समस्त ग्रन्थ भंडारों के प्रबन्धकों एवं ऐसे महानुभाव, जिनके पास प्राचीन पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं, से अनुरोध है कि वे निम्नांकित प्रारूप में पांडुलिपियों की जानकारी उपलब्ध कराने का कष्ट करें -

भंडार का नाम :

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13

(1) क्रम संख्या, (2) ग्रंथ संख्या, (3) ग्रंथ का नाम, (4) लेखक का नाम, (5) टीकाकार / प्रतिलिपिकार का नाम, (6) कागज या ताड़पत्र, (7) लिपि और भाषा, (8) गद्य या पद्य, (9) आकार (से.मी. में), (10) पत्र (पृष्ठ) संख्या, प्रत्येक पत्र की पंक्ति संख्या एवं प्रत्येक पंक्ति में सामान्य अक्षर संख्या, (11) पूर्ण अथवा अपूर्ण, (12) स्थिति (जीर्ण, अतिजीर्ण, सामान्य), (13) विशेष जानकारी यदि कोई हो तो (विषय, चित्रकारी आदि की जानकारी)

ट्रस्ट की योजनानुसार लगभग एक-एक हजार पांडुलिपियों की जानकारी भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक प्रारूप में तैयार कराकर खण्डश: प्रकाशित की जायेगी। स्वाभाविक रूप से सम्पूर्ण योजना के अन्तर्गत हमें बहुत से खंड प्रकाशित करना होंगे। सर्वप्रथम अमर ग्रंथालय, दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर में संग्रहीत लगभग 900 पांडुलिपियों का विवरण कम्प्यूटर पर तैयार किया जा रहा है एवं इसके बाद अन्य जैन मन्दिरों में सुरक्षित पांडुलिपियों की जानकारी का कम्प्यूटरीकरण किया जायेगा। विद्वानों के सुझाव एवं सामग्री निम्नांकित पते पर सादर आमंत्रित हैं —

जैन पांडुलिपियों के सूचीकरण की परियोजना
द्वारा - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर - 452001 (म.प्र.)
फोन : 0731 - 545421, 787790 फैक्स : 0731 - 787790
Email : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

निवेदक
हीरालाल जैन
अध्यक्ष - श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट,
580, जूनी माणेकवाडी,
भावनगर - 364001 (गुज.)
फोन : 423207, 511456

प्रकाशित जैन साहित्य का सूचीकरण

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के संयुक्त तत्वावधान में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा संचालित **प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण** की परियोजना का क्रियान्वयन 1 जनवरी 99 से प्रारंभ किया जा चुका है। हमें ज्ञात है कि पूर्व में भी कुछ विद्वानों एवं संस्थाओं ने एतद् विषयक प्रयास किये हैं किन्तु प्रकाशन का कार्य इतनी तीव्र गति से बढ़ा है कि वे प्रयास अब नाकाफी हो गए हैं तथा इस कार्य को बीच में छोड़ देने के कारण परिणाम अधिक उपयोगी न बन सके। हमारी योजना के अनुसार हम इस परियोजना के प्रतिफल इन्टरनेट एवं प्रिन्ट मीडिया द्वारा सर्वसुलभ करायेंगे। मात्र इतना ही नहीं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इस सूची में निरन्तर परिवर्द्धन करता रहेगा एवं जिनवाणी के उपासकों हेतु यह सदैव सुलभ रहेगी। ज्ञानपीठ द्वारा एतदर्थ आधुनिक संगणन केन्द्र (Computer - Centre) की स्थापना की जा चुकी है। हमारा अनुरोध है कि -

1. जिन संस्थाओं ने पूर्व में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण का प्रयास किया है वे अपनी सूचियों की छाया प्रतियां या फ्लापियां उपलब्ध कराने का कष्ट करें। छाया प्रतियां (फोटोकापी) या फ्लापियों का व्यय देय तो रहेगा ही, उनके सहयोग का उल्लेख भी भावी प्रकाशन में किया जाएगा।
2. समस्त ग्रंथ भंडारों / पुस्तकालयों के प्रबंधकों से भी अनुरोध है कि वे अपने संकलनों की परिग्रहण - पंजियों (Accession - Registers) की छाया - प्रतियां भी हमें भिजवाने का कष्ट करें। एतदर्थ शुल्क ज्ञानपीठ द्वारा देय होगा। यदि आवश्यकता हो तो हमारे प्रतिनिधि भी आपकी सेवा में उपस्थित हो सकते हैं।
3. जिन विद्वानों / प्रकाशकों ने जैन साहित्य का लेखन / प्रकाशन किया है, उनसे भी निवेदन है कि वे पूर्ण सूची / लेखक / शीर्षक / प्रकाशक / प्रकाशन स्थल / प्रकाशन वर्ष / संस्करण / मूल्य / प्राप्ति स्रोत आदि सूचनाओं सहित हमें शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें।

सभी विद्वानों / प्रकाशकों / भंडारों के व्यवस्थापकों / पुस्तकालयाध्यक्षों / संस्थाओं के पदाधिकारियों से इस महत्वाकांक्षी / विस्तृत योजना में सहयोग का विनम्र आग्रह है।

डॉ. अनुपम जैन
सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

(कु.) संध्या जैन
कार्यकारी परियोजनाधिकारी

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया - वाराणसी को निदेशक / उपनिदेशक की आवश्यकता

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी एक प्राचीन तथा प्रतिष्ठित शोध संस्थान है। अपने उच्च स्तरीय कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के द्वारा इस संस्था ने अपनी एक अलग पहचान बना रखी है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों के द्वारा स्थापित किये जाने के बाद विद्वत् वर्ग ही इसका संचालन करता रहा है।

संस्थान में एक स्थायी निदेशक / उप निदेशक की आवश्यकता एक लम्बे समय से महसूस की जाती रही है। सेवा निवृत्त प्रोफेसर / प्राध्यापक या विद्वान, जो यह समझते हों कि वे 8 - 10 वर्ष तक संस्थान में रहकर अध्ययन, अध्यापन, शोधकार्य, प्रकाशन में अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं तथा जो धर्म, दर्शन के कार्यों में अभिरूचि रखते हैं, कृपया डॉ. अशोक जैन, मंत्री - श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, 203 / 5, सरस्वती कुंज, रूढ़की वि.वि., रूढ़की से सम्पर्क करें। संस्थान के पास काशी हिन्दू वि.वि. की सीमा पर स्थित सुन्दर भवन, आवास की व्यवस्था, पुस्तकालय तथा अन्य मूलभूत सुविधायें मौजूद हैं।

संतों के सान्निध्य में श्रुत पंचमी

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा श्रुतपंचमी पर्व पर परमपूज्य ऐलाचार्य श्री नेमिसागरजी, आर्यिका श्री दृढ़मती माताजी ससंघ तथा ऐलक श्री सिद्धान्तसागरजी के मंगल सान्निध्य में धर्म सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता संस्थाध्यक्ष **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल** ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में **श्री हीरालालजी जैन,** अध्यक्ष - श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर उपस्थित थे। पूज्य आर्यिका माताजी ने अपने पावन उद्बोधन में कहा कि आचार्यों एवं साधु सन्तों द्वारा प्रणीत धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय, मनन और चिन्तन ही श्रुतपंचमी पर्व का उद्देश्य है। संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल ने आश्रम ट्रस्ट एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों की विस्तृत जानकारी दी। ज्ञानपीठ के सचिव डॉ. अनुपम जैन ने श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में चल रही जिनवाणी के संरक्षण की योजनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। ज्ञातव्य है कि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा भावनगर के उक्त ट्रस्ट के संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की योजना संचालित है।

श्री हीरालालजी जैन ने मुख्य अतिथि रूप में अपने उद्बोधन में सम्पूर्ण देश में विकीर्ण जैन पांडुलिपियों के संरक्षण, संकलन एवं सूचीकरण की आवश्यकता प्रतिपादित की एवं कहा कि पांडुलिपियों का संरक्षण एवं अप्रकाशित दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन से ही श्रुत पंचमी पर्व मनाने की सार्थकता है। पूर्वजों द्वारा प्रदत्त अमूल्य निधि का यदि हम संरक्षण न कर सके तो युग हमें कभी माफ नहीं करेगा। इस हेतु श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे कार्यों एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिसर में ट्रस्ट द्वारा शुरू की जा रही पांडुलिपियों के सूचीकरण की योजना की महत्ता बताई।

शुभारम्भ अवसर का दृश्य

इस अवसर पर जैन विद्या के अध्येताओं एवं समग्र जैन समाज द्वारा प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं की सूची की पुस्तिका का विमोचन किया गया तथा जैन पांडुलिपियों के सूचीकरण की महत्वाकांक्षी योजना का कम्प्यूटर के माध्यम से शुभारम्भ किया गया। संचालन ब्र. अशोकजी ने किया। इस अवसर पर श्री ब्र. अनिलजी, अधिष्ठाता - उदासीन आश्रम, सभी ब्रह्मचारीगण, श्राविकाश्रम की बहनें एवं श्री शैलेष देसाई, ट्रस्टी भावनगर भी उपस्थित थे।

राष्ट्र की धड़कनों की अभिव्यक्ति - हिन्दी का प्रमुख राष्ट्रीय दैनिक

नवभारत टाइम्स

परम पूज्य संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में (29 जुलाई 1999)

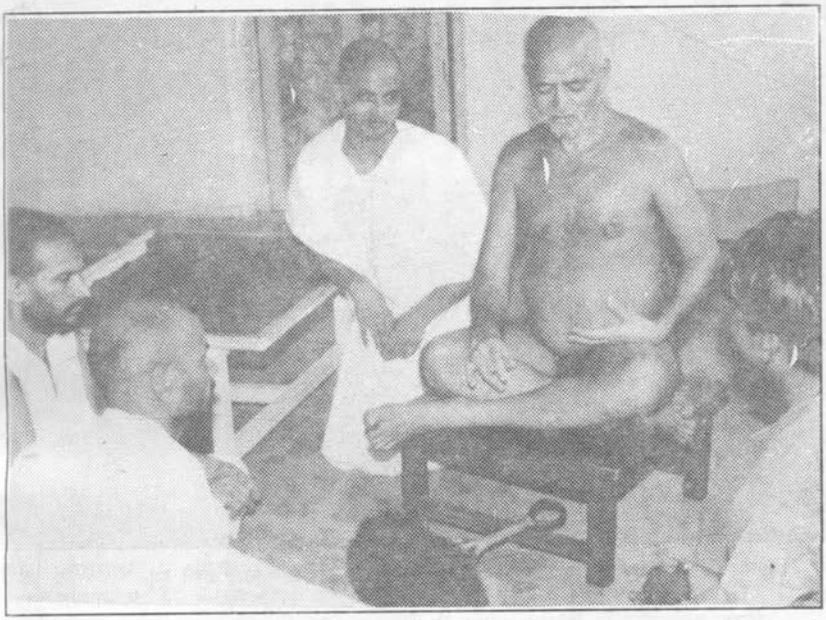

उदासीन आश्रम एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों की जानकारी प्रदान करते हुए बायें से क्रमश: ब्र. अशोक, ब्र. अनिल (अधिष्ठाता) ब्र. अभय (उपअधिष्ठाता) एवं श्री अरविन्द कुमार जैन शास्त्री (प्रबन्धक - उदासीन आश्रम)

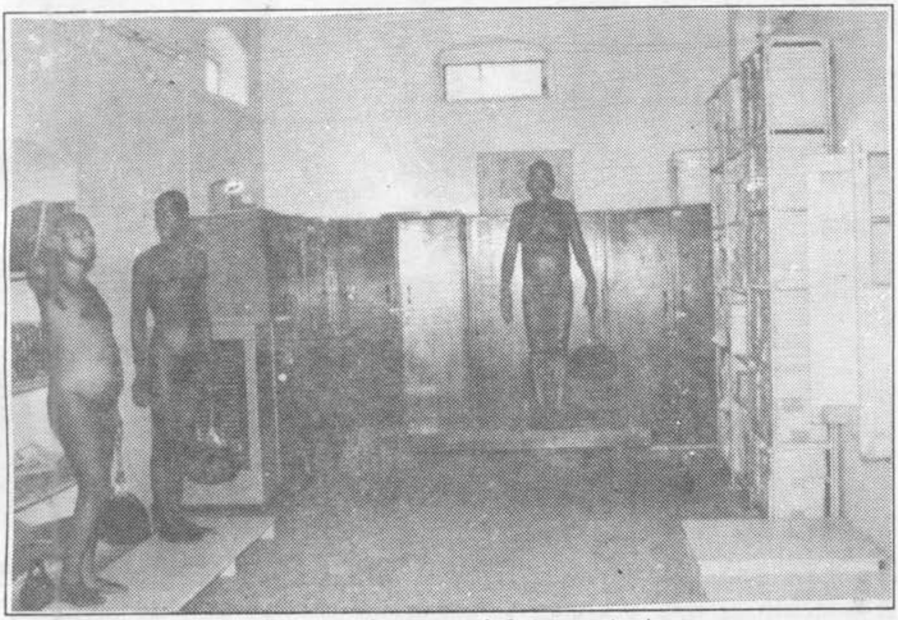

ज्ञानपीठ के कार्यालय में सामायिकरत आचार्य श्री (तख्त पर) एवं अन्य साधुगण

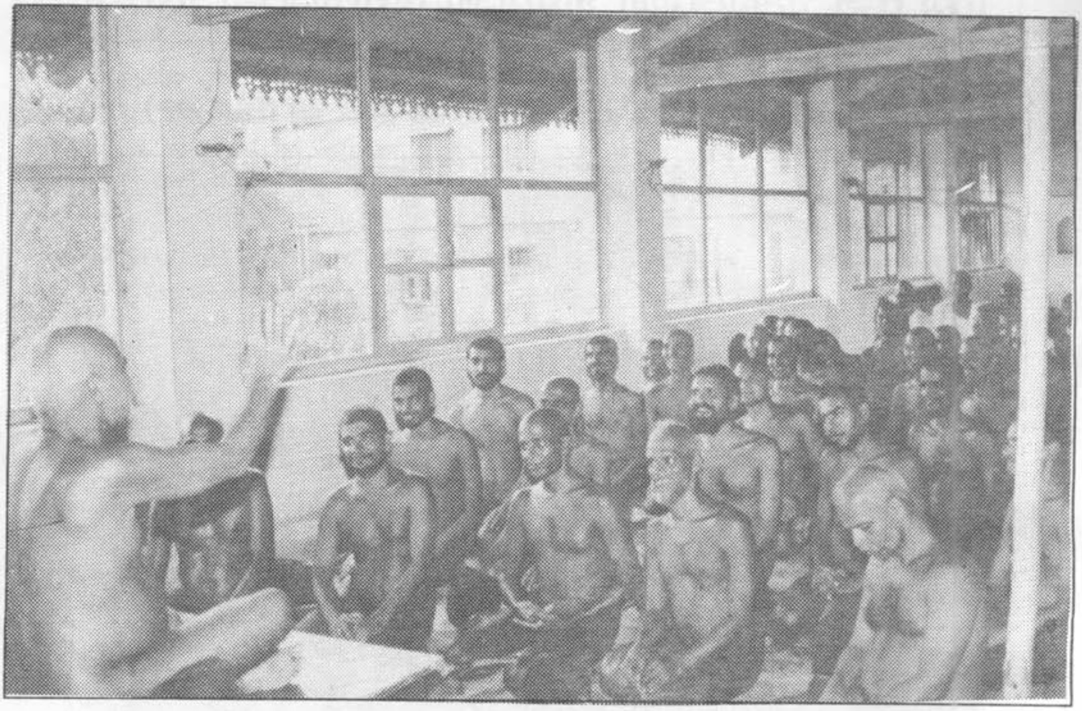

आश्रम के सभा कक्ष में विशाल मुनि संघ को सम्बोधित करते हुए

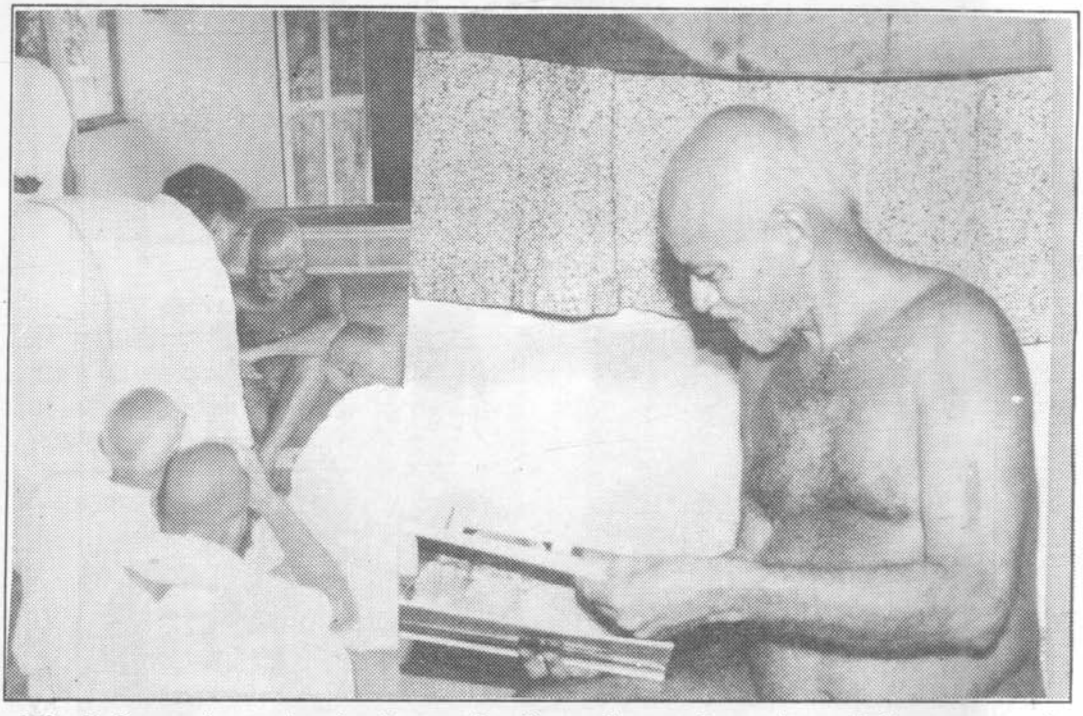

मुनिश्री की विनय करते हुए संस्था के कोषाध्यक्ष श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं आचार्य श्री कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा गोपाचल (ग्वालियर) तीर्थ पर प्रकाशित बहुरंगी पुस्तक का अवलोकन करते हुए।

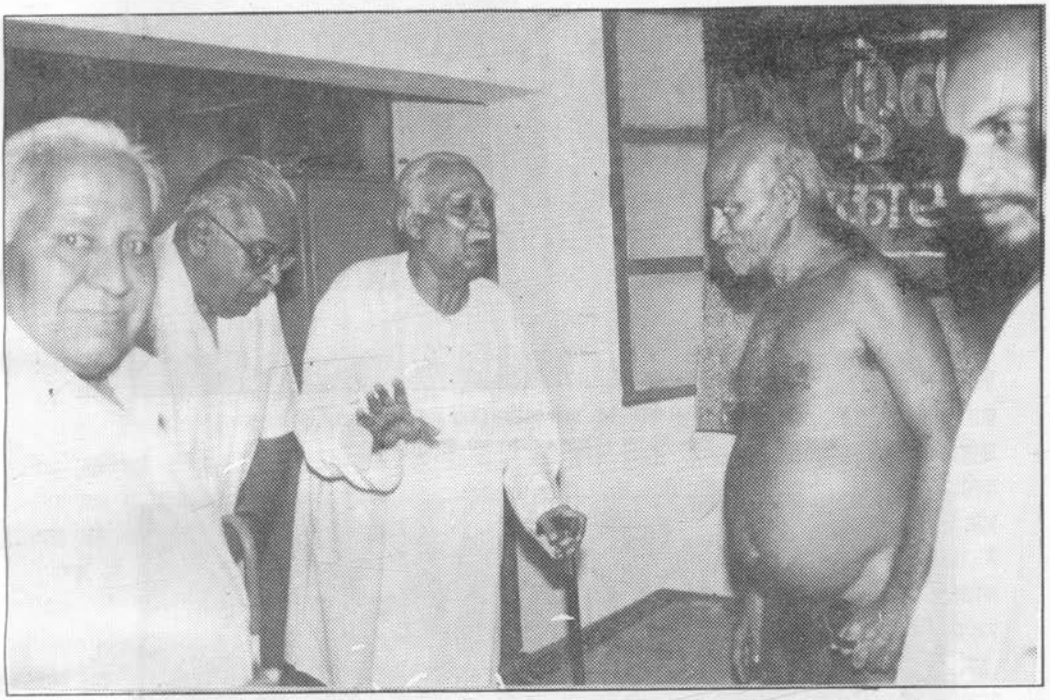

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में पदार्पण के समय ज्ञानपीठ की वर्तमान एवं भावी योजनाओं की आचार्य श्री को जानकारी देते हुए संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल। समीप है प्रसिद्ध उद्योगपति एवं जैन विद्याओं के प्रेमी श्री नेमनाथजी जैन तथा दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय महामंत्री श्री माणिकचंद पाटनी।

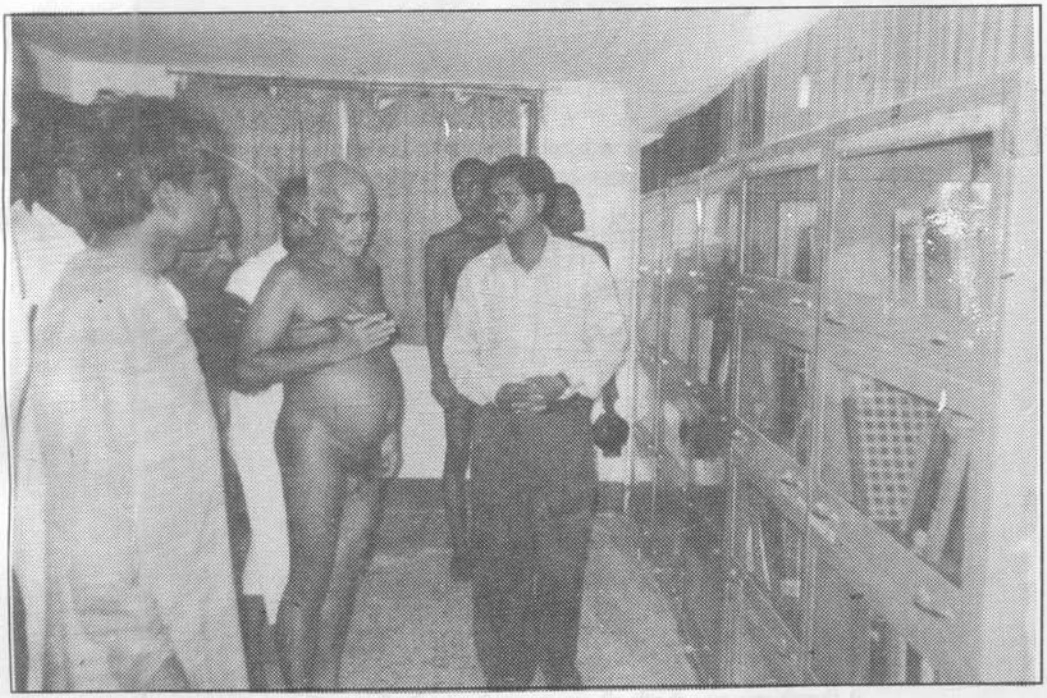

ज्ञानपीठ पुस्तकालय के संकलन, वर्गीकरण रीति आदि की विस्तृत जानकारी देते हुए सचिव डा. अनुपम जैन

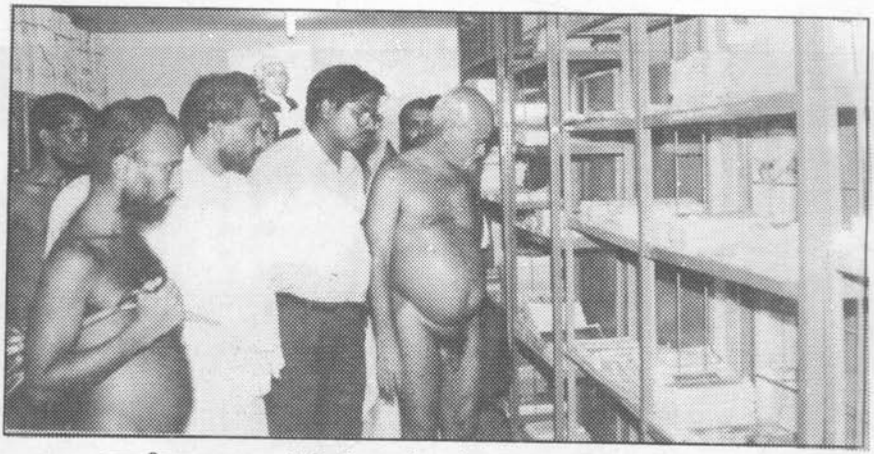

ज्ञानपीठ पुस्तकालय में नियमित आने वाली 150 पत्र-पत्रिकाओं के विशाल संकलन का निरीक्षण करते हुए आचार्य श्री

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से संचालित प्रकाशित जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना का कम्प्यूटर पर अवलोकन करते हुए आचार्य श्री। समीप है कार्यालयीन सहयोगी दायें से क्रमश: कु. संध्या जैन, कु. नीतू जैन, कु. सुरेखा पांडेय, श्री मनोज जैन, डा. अनुपम जैन (सचिव) आदि

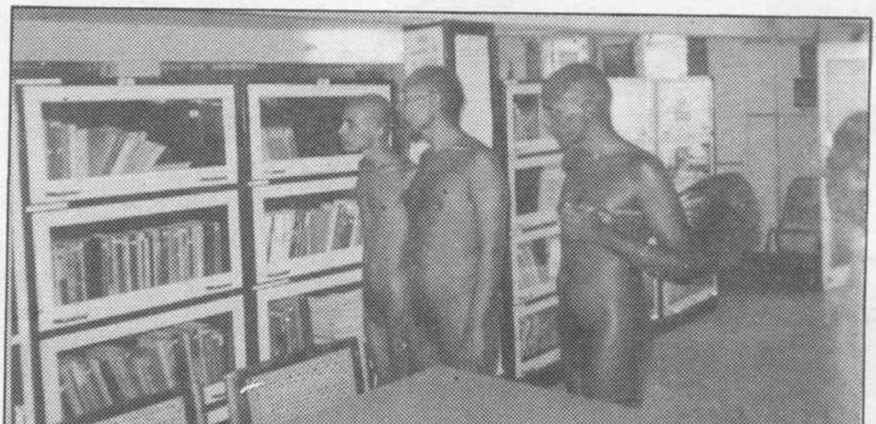

जिनवाणी के उत्थान हेतु सतत सचेष्ट मुनि श्री अभयसागरजी (मध्य में) पुस्तकों को सूक्ष्मता से निहारते हुए। साथ में मुनि श्री प्रणम्यसागरजी एवं मुनि श्री उत्तमसागरजी।

जैन विद्या विश्वकोश परियोजना का शुभारम्भ

सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर पर दिनांक 22.4.99 को प्रात: बेला में **पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज** के ससंघ पावन सान्निध्य में सर्वोदय जैन विद्यापीठ के तत्वावधान में संकलित होने वाले **'Encyclopaedia Jainica' (जैन विद्या विश्वकोश परियोजना)** का शुभारम्भ एक कार्यशाला के आयोजन के साथ हुआ।

इस उद्घाटन समारोह में दीप प्रजज्वलन श्रेष्ठिरत्न श्रीमंत अजितकुमारसिंहजी कासलीवाल, कोषाध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के करकमलों द्वारा हुआ। दीप प्रजज्वलन के अनन्तर परियोजना न्यासी श्री मूलचन्द लुहाड़िया, मदनगंज - किशनगढ़ ने परियोजना के प्रबन्ध के संदर्भ में जानकारी देते हुए इस अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की परियोजना का परिचय दिया। इस अवसर पर उपस्थित जनसमूह को परियोजना न्यासी श्री रतनलालजी बेनाड़ा, आगरा ने भी परियोजना की वित्तीय स्थितियों की जानकारी दी। श्री बेनाड़ा ने इस ज्ञान - यज्ञ हेतु अनिवार्य वित्तीय कोश में योगदान हेतु अपील भी की। इसके अनन्तर परियोजना के **अकादमिक संयोजक व प्रशासक डॉ. वृषभप्रसाद जैन** ने मंगलाचरण के साथ पूरी योजना के महत्त्व तथा अकादमिक पक्ष की जानकारी दी। उन्होंने परियोजना के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप व इसके द्विभाषी अर्थात् हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित होने की सूचना से अवगत कराया। उन्होंने यह भी कहा कि इस विश्वकोश में जैन धर्म, संस्कृति से संदर्भित प्रत्येक बिन्दु को समाहित करने का यत्न किया जायेगा। यह विश्वकोश जहाँ पुस्तक रूप में प्रकाशित होगा, वहीं कम्प्यूटर में प्रयोज्य सी.डी.रॉम के रूप में भी। इस प्रकार यह तकनीकी रूप में भी सर्वाधिक समृद्ध होगा। पांच माननीय जनों ने कम्प्यूटर में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु शब्दों को प्रविष्ट कर जैन विद्या विश्वकोश योजना का औपचारिक प्रारम्भ किया। उद्घाटन सत्र का संचालन ब्र. राकेश ने किया।

इस अवसर पर पूरे देश से पधारे जैनविद्या के विद्वानों डॉ. भागचन्द्र 'भास्कर' - नागपुर, डॉ. शीतलचन्द जैन - जयपुर, डॉ. रतनचन्द जैन - भोपाल, डॉ. नन्दलाल जैन - रींवा, पं. शिवचरणलाल जैन - मैनपुरी, डॉ. फूलचन्द्र 'प्रेमी' - वाराणसी, डॉ. नरेन्द्रकुमार जैन - श्रावस्ती, डॉ. अनुपम जैन - इन्दौर, डॉ. अभयप्रकाश जैन - ग्वालियर, डॉ. कुसुम पटेरिया - नागपुर, डॉ. पुष्पलता जैन - नागपुर, डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन - ग्वालियर / इन्दौर आदि विद्वानों ने पूज्य आचार्यश्री व मुनिसंघ को श्रीफल समर्पित किये।

सभा के अन्त में पूज्य आचार्यश्री ने मंगल - आशीष के रूप में सम्बोधा। आचार्यश्री ने कहा कि यह विश्वकोश जिनवाणी को जनवाणी तक पहुँचायेगा। चूंकि जिनवाणी नि:श्रेयस् की प्राप्ति का साधन होती है, अत: कोश सामान्यजन, आर्यिका तथा मुनि संघ आदि सभी के लिये मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में होगा। आचार्यश्री ने कहा कि कोश राजा और कवि दोनों के लिये आवश्यक होता है। दोनों में से किसी का भी काम कोश के बिना नहीं चल सकता। कोश के लिये होश तथा जोश भी आवश्यक है। उनका मत था कि होश व जोश के बिना न तो कोश का निर्माण ही हो सकता है और न उसका उपयोग। उनकी भावना थी कि यह विश्वकोश आचार्य पल्लवित सिद्धान्त को लेकर शब्द से श्रुत तक ले जाने की यात्रा का महत्त्वपूर्ण साधन बनेगा। आचार्यश्री ने अपने उद्बोधन में ध्वनि, शब्द और अर्थ की त्रियुति का उल्लेख करते हुए अर्थात्मा के भाव को कोश के लिये आवश्यक कहा और अर्थात्मा को ही मोक्ष का सहायक बताया। अंत में आचार्यश्री ने इस रूप में मंगल आशीष दिया कि यह योजना जन - जन के कल्याण का कारक होगी, अत: उनका शुभाशीष सबके साथ है।

इस उद्घाटन सत्र के अनन्तर दो दिन तक चलने वाली 'जैनविद्या विश्वकोश' संबंधित कार्यशाला में देशभर से पधारे विद्वानों ने परियोजना परिचय पुस्तिका के स्वरूप को अन्तिम रूप दिया, कोश के खण्डों के वर्गीकरण के लिये आधार तय किये तथा प्रविष्टि शीर्षक सूची का विश्लेषण किया।

■ **डा. वृषभप्रसाद जैन, अकादमिक संयोजक**

वर्ष 1999 के महावीर पुरस्कार एवं ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार

प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान - श्रीमहावीरजी के वर्ष 1999 के महावीर पुरस्कार के लिये जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बन्धित किसी भी विषय की पुस्तक / शोध प्रबन्ध की चार प्रतियाँ दिनांक 30 सितम्बर 1999 तक आमंत्रित की गई हैं। इस पुरस्कार में प्रथम स्थान प्राप्त कृति को रु. 11001 = 00 एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा तथा द्वितीय स्थान प्राप्त कृति को ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार रु. 5001 = 00 एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा।

31 दिसम्बर 1995 के पश्चात प्रकाशित पुस्तक ही इसमें सम्मिलित की जा सकती है। अप्रकाशित कृतियाँ भी प्रस्तुत की जा सकती हैं। अप्रकाशित कृतियों की तीन प्रतियाँ स्पष्ट टंकण / फोटोस्टेट की हुई तथा जिल्द बंधी होनी चाहिये। नियमावली तथा आवेदनपत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिये संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाईरामसिंह रोड़, जयपुर - 4 से पत्र व्यवहार करें।

यह सूचित करते हुए हर्ष है कि वर्ष - 98 का महावीर पुरस्कार **डॉ. रतनचन्द जैन, भोपाल** को उनकी कृति **'जैन दर्शन में निश्चय और व्यवहार नय - एक अनुशीलन'** तथा ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया साहित्य पुरस्कार **पं. निहालचन्द जैन** को उनकी कृति **'नैतिक आचरण'** पर दिनांक 1.4.99 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयन्ती के वार्षिक मेले के अवसर पर प्रदान किया गया।

■ **कमलचन्द सोगाणी, संयोजक**

स्वयंभू पुरस्कार 1999

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष 1999 के **स्वयंभू पुरस्कार** के लिये अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्धित विषय पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियाँ 30 सितम्बर 1999 तक आमंत्रित की गई हैं। इस पुरस्कार में 11001 = 00 रुपये एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा।

31 दिसम्बर 1995 के पूर्व प्रकाशित तथा पहले से पुरस्कृत कृतियाँ सम्मिलित नहीं की जायेगी। अप्रकाशित कृतियाँ भी प्रस्तुत की जा सकती हैं। अप्रकाशित कृतियों की तीन प्रतियाँ स्पष्ट टंकण / फोटोस्टेट की हुई तथा जिल्द बंधी होनी चाहिये। पुस्तकें संस्थान की सम्पत्ति रहेंगी, वे लौटाई नहीं जायेंगी। नियमावली तथा आवेदनपत्र का प्रारूप प्राप्त करने के लिये संस्थान कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाईरामसिंह रोड़, जयपुर - 4 से पत्र व्यवहार करें।

यह सूचित करते हुए हर्ष है कि वर्ष - 98 का स्वयंभू पुरस्कार **डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'**, को उनकी कृति **'पासणाह चरिउ - एक समीक्षात्मक अध्ययन'** पर दिनांक 1.4.99 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयन्ती के वार्षिक मेले के अवसर पर प्रदान किया गया।

कमलचन्द सोगाणी, संयोजक

श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी - वाराणसी की ओर से अपने संस्थापक पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी की स्मृति में वर्ष 1999 के पुरस्कार के लिये जैन धर्म, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, समाज, संस्कृति, भाषा एवं इतिहास विषयक मौलिक, सृजनात्मक, चिंतन, अनुसंधानात्मक, शास्त्री परम्परा युक्त कृति पर पुरस्कारार्थ 4 प्रतियाँ आमंत्रित हैं। इस पुरस्कार में रु. 5,000 = 00 नकद तथा प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। 1996 के बाद की प्रकाशित पुस्तकें इसमें शामिल की जा सकती हैं। नियमावली निम्न पते पर उपलब्ध है -

डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी'
संयोजक - श्री वर्णी स्मृति साहित्य पुरस्कार समिति,
श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी

ENCYCLOPEDIA OF JAINISM

The meeting of editors of the different volumes of Encyclopedia of Jainism was held on the 7-8-9th May 99 at Jaipur. The meeting was attended by Dr. Premchand Gada (Project Director), Dr. Dilip Bobra-U.S.A. (Vice President-Jafna), Dr. Lalit Shah-Ahmedabad; Dr. R. C. Sharma-Varanasi, Dr. Bhag Chand Jain-Nagpur, Dr. Shreeranjan Soorideva-Patna, Dr. Anupam Jain-Indore, Dr. Dharma Chanda Jain-Jodhpur, M. Vinaysagar-Jaipur, Dr. Shambhu Nath Pandye-Shillong, Dr. Prem Suman Jain-Udaipur, Dr. Dev Kothari-Udaipur, Dr. Kamal Chand Sogani-Jaipur (Chief Editor).

The progress of the volumes is satisfactory. Dr. K. C. jain, who could not attend the meeting owing to illness has completed the volume on **History of Jainism.** It will be soon sent to the press. Its Hindi translation is in progress.

It was decided that those who want to go through it before publication are welcome to the chief editor's house in Jaipur (Ph.: 376415)

The volume of **Language & Literature** has been divided into two parts. 1st part will include the following laguages - Sanskrit, Tamil, Kannada, Gujarati & Telgu. Dr. Rajaram Jain, Arah will be editor incharge of this volume. 2nd part will include the following laguages - Maharashtri Prakrit, Ardhamaghadi Prakrit, Sauraseni Prakrit, Apabharamsa, Rajasthani & Hindi. Prof. Ranjan Suri Deo will remain the incharge of it.

The new volume has been added - (1) Jaina Society and (2) Jain Manuscripts & Inscription. (जैन पाण्डुलिपि एवं शिलालेख). The references will be given at the end of the writings and not at the bottom of the page.

It is a matter of great satisfaction that all the editors present in the meeting were eagar to finish the work of preparing the volumes as early as possible. For three days different editors expressed their views regarding the content of the volumes. Discussions were very encouraging and informative.

■ **K. C. Sogani,** Chief Editor

विराट तृतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

झाडोल (सराडा) जि. उदयपुर - 21 - 25 नवम्बर 1999

पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दिजी महाराज के पुनीत ससंघ सान्निध्य में आगामी 21 - 25 नवम्बर के मध्य झाडोल (उदयपुर) में आचार्य श्री द्वारा रचित पुस्तक सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान पर आधारित राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी आयोजित है। संगोष्ठी के बारे में विस्तृत सूचनाओं का परिपत्र निम्न पते से प्राप्त किया जा सकता है -

श्रीमती रतनमाला जैन
C/o. डॉ. राजमल जैन
4 - 5, आदर्श कालोनी पुँला,
पो. बा. 245, **उदयपुर** - 313 001
फोन : 0294 - 440793

शोध पत्र का सारांश भेजने की **अंतिम तिथि 15.9.99।**

Summer School by B L I I

The Valedictory function of 11th Summer School on Prakrit Language and Literature, organised by the Bhogilal Leherchand Institute of Indology, Delhi was held on 13th June 99. Dr. Balmiki Prasad Singh, I.A.S., Secretary - Ministry of Health, Government of India was the chief guest. In his address he emphasised the need of the study of Prakrit language and literature to promote Indian culture. The power of Mahavira and Buddha's words lies in their message of truth, non - violence and non - possession. It does not lie in blind faith.

Presiding over the function, Mr. M. C. Joshi, Member - Secretary, Indira Gandhi National Centre for the Arts, exhorted that Prakrit language is one of the links of the main cultural current of this country, which is dying under the blaze of the English language and western culture. This institution has been working for more than one decade past for the propogation and preservation of Prakrit language and literature, which deservesencouragement from all national educational establishments. Otherwise Prakrit and Sanskrit languages, the heritage of Indian culture, will die out.

The 4th annual Acharya Hemchandrasuri Puraskar of Rs. 51,000/- for the year 1998 was presented to Prof. A. M. Ghatge for his outstanding contribution to Prakrit language and literatue by Shri Deven Yeshwant on behalf of the Jaswanta Dharmarth Trust. Six prizes of Rs. 2100/-, Rs. 1100/- and Rs. 500/- to the Ist, 2nd anf d 3rd position holders in the Advanced and Elementary Courses were given to the recipents alongwith a set of books.

The function was attended by Dr. R. C. Tripathi, Secretary - Rajya Sabha, Prof. Satya Ranjan Banerjee, Prof. Prem Singh, Prof. Vimal Praksh jain, Sri Pratap Bhogilal (Chairman), Shri Narendra Prakash jain (Vice Chairman), Shri Rajkumar Jain (Secretary - Smarak0 and Shri Deven Yeshwant (Treasurer - BLII) etc.

श्री साहू रमेशचन्द जैन द्वारा विद्यासागर इन्स्टीट्यूट का निरीक्षण

सम्पूर्ण राष्ट्र एवं जैन समाज के शीर्षस्थ एवं वरिष्ठतम नेता श्री साहू रमेशचन्द जैन, कार्यपालिक संचालक - टाइम्स ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, श्री बी. आर, जैन, अध्यक्ष - भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद, श्री उम्मेदमलजी पांड्या - नई दिल्ली, राष्ट्रीय कवि एवं साहित्यकार श्री ताराचन्द्र प्रेमी - गुढ़गांव ने 14 जून 99 को विद्यासागर इन्स्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेन्ट, भोपाल का निरीक्षण किया। इस अवसर

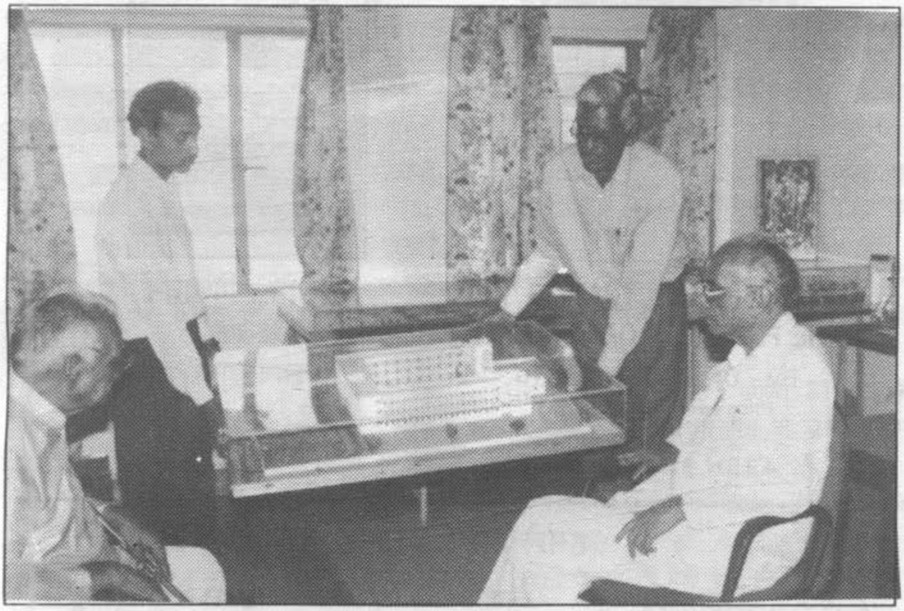

श्री साहू रमेशचन्द्र जैन एवं श्री ताराचन्द्र प्रेमी को छात्रावास का माडल दिखाते हुए
संस्थान के संचालक डॉ. डी. व्ही. जैसवाल

पर संस्थान के महामंत्री श्री महेन्द्रकुमार जैन सूत वाले, श्री सुरेश जैन, आई.ए.एस., श्री ए. के. जैन, अपर आयुक्त, श्री डी. व्ही. जैसवाल, संचालक एवं महावीर ट्रस्ट के उपाध्यक्ष श्री शरद जैन उपस्थित थे। श्री सुरेश जैन, श्री एस. के. जैन एवं डॉ. डी. व्ही. जैसवाल ने अतिथियों का माल्यार्पण कर स्वागत किया और उन्हें संस्थान की प्रगति की जानकारी दी।

श्रीमती सरोज जैन को पीएच.डी. उपाधि

सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग की शोधछात्रा श्रीमती सरोज जैन ने 14वीं शताब्दी के प्रसिद्ध अपभ्रंश कवि लखमदेव की महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित अपभ्रंश रचना पर **'णेमिणाहचरिउ का सम्पादन एवं सांस्कृतिक अध्ययन'** शीर्षक से शोधप्रबन्ध प्रस्तुत कर 1999 में पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की है। श्रीमती जैन हिन्दी साहित्य और प्राकृत साहित्य में एम.ए. हैं। आपने अपना यह शोधकार्य प्राकृत के विद्वान **डॉ. उदयचन्द जैन** के निर्देशन में सम्पन्न किया है। श्रीमती सरोज जैन ने अपभ्रंश भाषा की एक अज्ञात और अप्रकाशित पाण्डुलिपि णेमिणाहचरिउ का सम्पादन और उसका राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत कर जैन साहित्य की सेवा की है। आप जैनविद्या के मनीषी प्रो. प्रेमसुमन जैन की पत्नी और श्री जवाहर जैन शिक्षण संस्था, उदयपुर में अध्यापिका हैं।

■ डॉ. कल्पना जैन, भोपाल

हमारे प्रकाशन

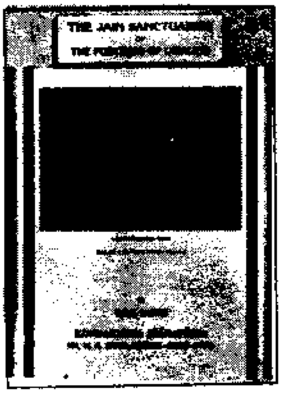

THE JAIN SANCTUARIES OF THE FORTRESS OF GWALIOR

By - **Dr. T.V.G. SASTRI**

Price - Rs. 500.00 (India)
U.S.$ 50.00 (Abroad)

I.S.B.N. 81-86933-12-3

जैनधर्म : विश्वधर्म

- लेखक -

पं. नाथूराम डोंगरीय जैन

मूल्य – रु. 10.00

I.S.B.N. 81-86933-13-1

हमारे अन्य प्रकाशन

	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
* 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-x	200.00
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	3.00
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	4.00
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	3.75
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	3.75
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	3.75
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	3.75
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	5.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	4.00

* अनुपलब्ध

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

अर्हत् वचन पत्रिका का माह अप्रैल 99 का अंक प्राप्त हुआ। आपकी सभी सम्पादकीय पठनीय होती है और मैं उन्हें बराबर पढ़ता हूँ पर आपने इस अंक की सम्पादकीय में जैन समाज की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का कुछ ऐसे बिन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो किसी एक के बस की बात नहीं है और वे केवल संस्थाओं के माध्यम से ही क्रियान्वित हो सकते हैं। इन बिन्दुओं को प्रकाश में लाने के लिये मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सामाजिक संगठन अपने कार्यक्रम तय करते समय इन बिन्दुओं पर अवश्य विचार करेंगे। आपका यह अभिनव प्रयास सराहनीय है।

इस अंक में विद्वान श्री गुलाबचन्दजी जैन का आलेख 'विशाला (बद्रीनाथ)' पढ़ा। आदरणीय लेखक महोदय ने पृष्ठ 54 पर पहले पैराग्राफ पर लिखा है कि - 'भगवान ऋषभदेव के दीक्षा कल्याणक महोत्सव को देखने के लिये महारानी मरूदेवी सहित महाराज नाभिराय सैकड़ों राजाओं और पुरजनों के साथ ऋषभदेव की पालकी के साथ चल रहे थे। इसके पश्चात नाभिराय कब तक जीवित रहे तथा अपना शेष जीवन कहाँ और किस प्रकार व्यतीत किया इसकी चर्चा शास्त्रों में कहीं देखने को नहीं मिली।'

वहीं अगले पैराग्राफ में लिखते हैं कि - 'महाराज नाभिराय ने धर्म मर्यादा की रक्षा के लिये अपने पुत्र ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर स्वयं विशाला बद्रिकाश्रम में प्रसन्न मन से उत्कृष्ट तप तपते हुए यथाकाल महिमापूर्ण जीवन मुक्ति निर्वाण प्राप्त किया।'

उपरोक्त दोनों कथन से महाराज नाभिराय के जीवन के संबंध में पाठक को भ्रांति होती है। अगर विद्वान लेखक महोदय वास्तविक स्थिति से अवगत करा देते तो श्रेयस्कर होता। खैर! यदि विद्वत् समुदाय महाराज नाभिराय के शास्त्रोक्त जीवन की जानकारी दे सकें तो बड़ी कृपा होगी।

■ **माणिकचन्द जैन पाटनी, इन्दौर**
महामंत्री - दि. जैन महासमिति
ए - 16, नेमीनगर, इन्दौर

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का यह पुस्तकालय अपने वास्तविक अर्थ को प्रकट करता हुआ सा प्रतीत होता है अर्थात् ज्ञान की पीठिका। यहाँ की उत्तम व्यवस्था, सुव्यवस्थित साहित्य तथा दुर्लभ अनुशासन पाठकों को अपनी ओर बरबस ही आकर्षित करता है। इस सुव्यवस्था का सम्पूर्ण श्रेय यहाँ के सम्पूर्ण कार्य की अहर्निश देख-रेख करने वाले ज्ञानपीठ के सचिव परम श्रद्धेय डॉ. अनुपम जैन को है, जिन्होंने अपनी अनुपम कार्य शैली से सम्पूर्ण जैन समाज में एक सर्वोत्तम स्थान बनाया है। मैं परम पिता परमेश्वर से उनके स्वस्थ, समृद्ध और सुखी जीवन की कामना करता हूँ तथा मंगलमय प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि प्रभु आपको चिरायु प्रदान करे। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

■ **डॉ. राजेशकुमार अग्रवाल**
सनातन धर्म इण्टर कालेज,
सदर, मेरठ – 250 002

आज संयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में बैठकर अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। जैन दर्शन और संस्कृति की अमूल्य धरोहर को समेटकर इस ग्रंथालय में सुव्यवस्थित तौर पर रखा गया है। आदरणीय डॉ. अनुपम जैन का वात्सल्य पाकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।

■ **राकेश केशरिया**
बड़ागांव (घसान), **टीकमगढ़** – 472010

जैन जगत की अपूरणीय क्षति

प्रो. अक्षयकुमारजी जैन, इन्दौर

69 वर्ष की आयु में प्रो. अक्षयकुमार जैन का आकस्मिक निधन - इन्दौर में दिनांक 19.11.98। आप गुजराती कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक थे।निमित्त एवं ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित प्रो. जैन साधु सन्तों में भी विशेष लोकप्रिय थे। आपको आचार्य विमलसागरजी महाराज के सान्निध्य में बम्बई तथा आचार्य कुन्थुसागरजी महाराज के सान्निध्य में जयपुर में सम्मानित किया गया था।

पं. बलभद्रजी जैन, दिल्ली

84 वर्ष की आयु में 26 मई 99 को दिल्ली में निधन। 'भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ' के 4 खण्डों तथा जैन दर्शन के प्राचीन इतिहास, भाग - 1 के यशस्वी लेखक तथा अनेक वर्षों तक **'प्राकृत विद्या'** के प्रधान सम्पादक रहे। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर से प्रकाशित 'जैन धर्म का सरल परिचय' पुस्तक के बहुश्रुत लेखक। कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली से अनेक वर्षों तक जुड़े रहे।

पं. श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री, फिरोजाबाद

85 वर्ष की आयु में 26 मई 99 को हृदयाघात से निधन। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा के मुखपत्र **'जैन गजट'** के प्रधान सम्पादक, आर्ष परम्परा के यशस्वी विद्वान, 40 वर्षों तक पी. डी. जैन इन्टर कालेज, फिरोजाबाद के प्रबन्धक, 1998 में श्री रंगनाथा गांधी जनमंगल प्रतिष्ठान, शोलापुर द्वारा 'आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार से सम्मानित।

ब्र. सम्यक्त्व भारती जी, इन्दौर

जन्म - 4.12.65 निधन - 28.5.99

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से 8.11.85 को आहारजी में क्षुल्लक दीक्षा, थुवोनजी (म.प्र.) में 10.7.87 को ऐलक दीक्षा। हृदय शल्य क्रिया हेतु दीक्षा त्याग। दीक्षा के उपरान्त नाम श्री सम्यक्त्व सागर जी। दीक्षा त्याग के पश्चात नाम श्री सम्यक्त्व भारती। लगभग 30 पुस्तकों के लेखक। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों में विशेष रूचि।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि

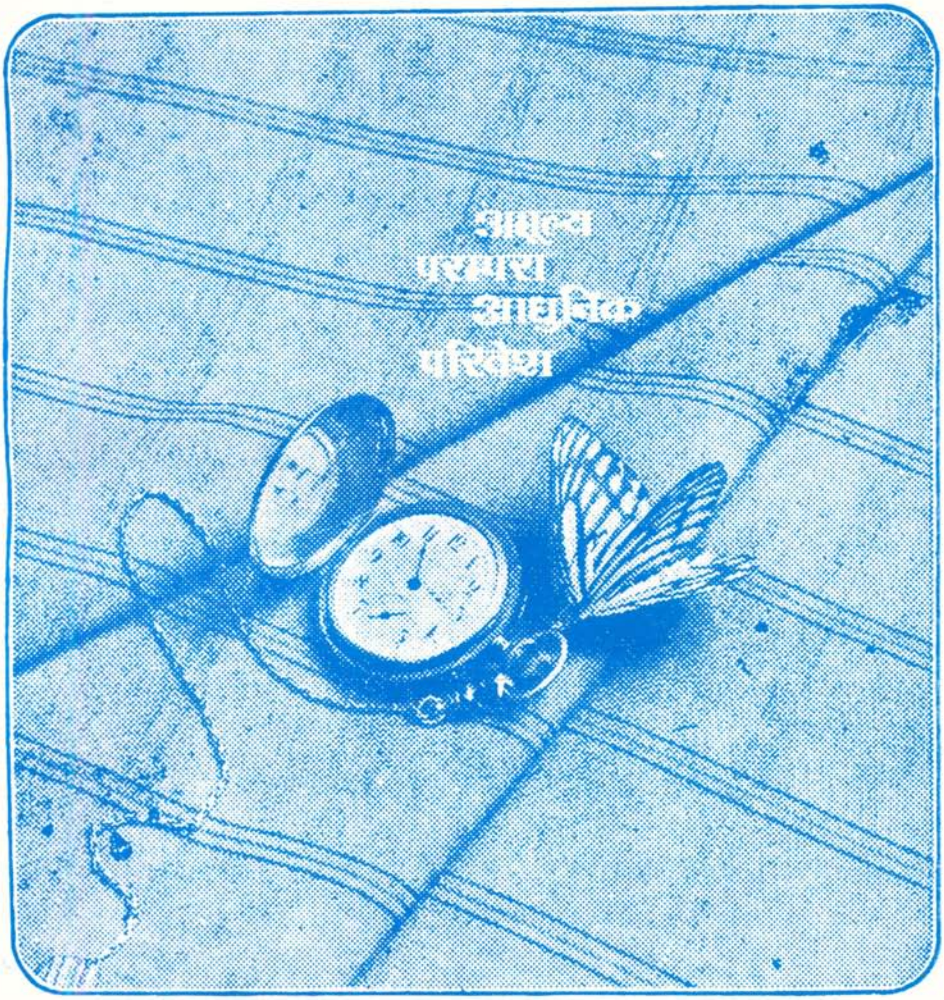

एस.कुमार्स द्वारा दोनों ही अनुपम गुणों का समन्वय

आधुनिक परिवेश में सुसज्जित हमारे वस्त्रों में
उन अमूल्य गुणों का भी समावेश रहता है
जिन्हें समय भी बदल नहीं पाया…
यह अमूल्य निधि अर्थात हमारी परम्परा
प्रतिबिम्बित है हमारे वस्त्रों के कलात्मक डिज़ाइनों,
पोत एवं बुनावट शैलियों के साथ उत्कृष्टता,
टिकाऊपन तथा किफ़ायत जैसे दुर्लभ गुणों के
समन्वय में। इसीलिये जब भी आप
उत्कृष्ट वस्त्र खरीदना चाहेंगे तो एस. कुमार्स वस्त्रों में
एक बात सुनिश्चित पायेंगे कि आपको
प्राप्त होगा लाभ ही लाभ।

एस.कुमार्स®

टेरीन सूटिंग, शर्टिंग, साड़ियां

'निरंजन', ९९, मरीन ड्राइव,
बम्बई ४०० ००२

ऊंची से ऊंची क्वालिटी-नीचे से नीचे दाम

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ

इन्दौर

स्वामित्व श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** यू.जी. 18, सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर द्वारा मुद्रित।

मानद् सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**